

# श्रीगुरुजी के प्रेरक संस्मरण



संकलनकर्ता  
दि. भा. घुमरे

# श्रीगुरुजी के प्रेरक संस्मरण

संकलनकर्ता

दि. भा. घुमरे

दो शब्द :

श्री गुरुजी जन्मशताब्दी वर्ष (२००६-२००७) के अवसर पर जनसाधारण को, श्री गुरुजी का व्यक्तिमत्त्व, उनके विचार तथा उनका कार्य आदि विषयों में अवगत कराने हेतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबंधित डॉ. हेडगेवार स्मारक समिति ने छोटी छोटी पुस्तिकाएँ तैयार करने की एक योजना बनायी है। उसी योजना के अंतर्गत, 'श्री गुरुजी के प्रेरक संस्मरण' सह प्रस्तुत पुस्तिका है।

श्री गुरुजी का आदर्श जीवन, उनके मूलभूत विचार तथा उनका ३३ वर्षों का निरन्तर कार्य यह एक महासागर की भाँति गहराई और विराटता का उदाहरण है। ऐसे इस विराट, गहरे महासागर में सर्वत्र बिखरे हुए संस्मरण के रत्नों में से कुछ ही रत्नों को इस पुस्तिका में पिरोया गया है।

'श्री गुरुजी समग्र दर्शन', तथा श्री राधेश्याम बंका द्वारा संकलित 'श्री गुरुजी जीवन प्रसंग', इन ग्रंथों में वर्णित अनेकों प्रेरक संस्मरणों में से कुल ४६ (छयालीस) संस्मरणों को इस पुस्तिका में साभार उद्धृत किया गया है।

आशा है इन संस्मरणों से श्रीगुरुजी के व्यक्तित्व, विचार और कार्य के कुछ अंशों का पाठकों को अवश्य परिचय होगा।



## 9. जीवन और कार्य की एकरूपता

सन १९४६ के दिन थे। संघ से प्रतिबंध हटने के पश्चात् श्री गुरुजी देशभर में आयोजित स्वागत कार्यक्रमों को संपन्न करके कुछ दिनों के लिए काशी रहे थे। काशी में सदा की तरह उनके ठहरने की व्यवस्था श्री दत्तराज कालिया (काले) के निवास पर हुई थी। काशी में उनका पूर्ण विश्राम हो, यह ध्यान में रखते हुये कोई कार्यक्रम नहीं रखे गये। उन दिनों मैं काशी में संघ प्रचारक के नाते काम देखता था।

आते ही श्री गुरुजी ने कार्यक्रमों के बारे में पूछा तब उन्हें बताया गया कि आपको यहाँ पूर्ण विश्राम करना है। प्रतिबंध हटने के बाद देशभर में उनके स्वागत कार्यक्रमों के कारण श्री गुरुजी अत्यधिक श्रमित-थकित थे, इसलिये यह निर्णय लिया गया था।

उत्तर सुनते ही श्री गुरुजी गंभीर हो गये और समझाने लगे कि विश्राम की यह कल्पना ठीक नहीं है। कार्यक्रम अवश्य होने चाहिये।

नगर कार्यवाह डा. बनर्जी बोले-इस समय आप हमारे चार्ज में हैं और हमने कोई कार्यक्रम न रखकर आपके विश्राम की योजना बनायी है।

फिर वे कुछ नहीं बोले। पर रात होते ही उन्हें खाँसी का जोर पकड़ने लगा। दूसरे दिन प्रातः को देखा तो खाँसी से उनका बुरा हाल हुआ है, यह ध्यान में आया और सब चिंतित हुये। वे रातभर खाँसते रहे। चेहरा, आँख लाल थीं। स्वास्थ्य तेजी से गिर रहा था।

डा. बनर्जी ने पूछा - 'गुरुजी ! यह क्या बात है? सोचा था विश्राम से आपको लाभ होगा किन्तु आपकी स्थिति देखकर चिंता हो रही है।

गुरुजी बोले 'मैं क्या कहूँ? जो आप सबने सोचा उसीका यह परिणाम हो रहा है।

इस पर हम सबकी आँखों में आँसू आ गये। डॉ बनर्जी का गला रुँध गया और वे गुरुजी से बोले - 'हमने तो आपके स्वास्थ्य के हित में ही सारा विचार करके विश्राम का आयोजन किया था। उसका ऐसा उलटा परिणाम कैसे? आपके स्वास्थ्य में यह गिरावट देखकर हम सभी बंधु बहुत व्याकुल हैं। बताइये हम क्या करें?'

श्री गुरुजी बोले - 'देखो डॉक्टर ! तुम सोच रहे हो कि पूर्ण विश्राम से यह शरीर अच्छा हो जायेगा। किन्तु ऐसी बात नहीं है। सच पूछो तो इस शरीर में ऐसा कुछ ज्यादा बचा नहीं है जिसके द्वारा यह चल सके। डॉक्टरों के हिसाब से यह शरीर कभी का समाप्त हो चुका है। जब ये कार्य से अलग करवा दिया गया तो यह शरीर अपनी स्वाभाविक अवस्था की ओर जा रहा है। सच्चाई तो यह है कि मैं दिनरात संघकार्य में लगा-रहता हूँ इसी के कारण यह शरीर सधा हुआ है और चल रहा है। यदि तुम चाहते हो कि यह शरीर स्वस्थ रहे तो पूर्ण विश्राम के बजाय यथाविधि कार्यक्रम चलने दो। तुरंत ही हम लोगों ने वैसा ही किया। देखते देखते ही फिर वार्तालाप और कार्यक्रमों के बीच श्री गुरुजी की वही हँसी, वही ठहाका आरंभ हो गया और दो तीन दिन में ही स्वास्थ्य पहले जैसा हो गया।

जीवन और जीवनकार्य इतने एकरूप हो सकते हैं, इसकी कभी कल्पना भी नहीं थी। हमारे आँखों के सामने यह एक जीता जागता उदाहरण था। तब हम लोगों के समझ में आया कि इस महापुरुष ने तन से एवं मन से अपने आपको कार्य से एकाकार कर लिया है। अब शरीर से जीवनकार्य नहीं चल रहा है, अपितु जीवनकार्य ही शरीर को चला रहा है।

- राजेन्द्र शर्मा

## २. यह कैसे संभव हुआ ?

रा.स्व.संघ के प्रथम अ.भा. प्रचारक प्रमुख होली के रंगोत्सव के दिन एक बार रुष्ट हो गये थे। उनके द्वारा मना करने पर भी एक कार्यकर्ता ने बाबासाहेब आपटे पर रंग के कुछ छिटें डाल ही दिये। उनको बहुत बुरा लगा और उन्होंने रुष्ट होकर अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया।

लोगों ने उनकी नाराजगी पर भी ध्यान नहीं दिया। उनका यही विश्वास था कि थोड़ी देर में सब शांत हो जायेगा। दोपहर भोजन के समय भोजनकक्ष में बाबासाहेब नहीं आये। उनके बंद दरवाजे को थपथपाकर उनसे कहा गया कि भोजन का समय हो गया है। परन्तु न उन्होंने उत्तर दिया न दरवाजा खोला।

श्री गुरुजी भी भोजन के लिये आये। बाबासाहेब के रुष्ट होने की बात उन्होंने सुनी। श्री गुरुजी ने किसी से कुछ नहीं कहा। जिसने रंग के छीटें डाले थे, उसको भी कुछ नहीं कहा। बाबासाहेब के कमरे के दरवाजे के पास चुपचाप जा बैठे। न कुछ बोले न दरवाजा थपथपाया। कुछ देर बाद बाबासाहेब ने दरवाजा खोला। श्री गुरुजी ने उनसे कहा, 'चलिये, भोजन करने चला जाये'।

दोनों साथ साथ भोजन कक्ष में आये। भोजन करते समय या बाद में भी सुबह के रंग के छीटें डालने के संबंध में किसी ने कुछ नहीं कहा। पर यह सब कैसे हुआ?

बाबासाहेब के कमरे के बंद दरवाजे के सामने चुपचाप बैठ जाने के प्रसंग की याद कई बार उभर कर आती है और ऐसा विश्वास करने को बाध्य कर देती है कि श्री गुरुजी की भावात्मक सूक्ष्म क्षमतायें बहुत अधिक समृद्ध तथा समर्थ थीं।

-बाला प्रसाद तुलस्यान

### ३. शरीर पर नियंत्रण

सन १९४३ या १९४४ के आसपास की बात है। श्री गुरुजी के दाहिने हाथ में अत्यंत कष्टदायी पीड़ा होने लगी। एलोपैथ डॉक्टरों ने सलाह दी कि दर्द का कारण दाँत हैं, अतः उन्हें निकलवा देना चाहिये। होमयोपैथ्स ने कहा कि दाँत निकालने की आवश्यकता नहीं है। इसी झंझट में दो वर्ष व्यतीत हो गये और श्री गुरुजी को उसी प्रकार कष्ट सहते रहना पड़ा।

इधर कुछ दिन पश्चात् उनके दाँत में भी पीड़ा होने लगी। अंत में दाँत निकलवा देना ही उचित समझा गया। इसके लिये वे काशी गये। पीड़ा एक दाँत में थी, किन्तु डॉक्टरों ने समस्त दाँत निकालने का निश्चय किया। डॉक्टरों ने इन्जेक्शन लगाकर मसूड़ों को सुन्न करने का प्रस्ताव रखा। परन्तु गुरुजी ने उनसे कहा कि मसूड़ों को सुन्न करने के लिए इन्जेक्शन लगाने की जरूरत नहीं है।

उन्होंने बिना इन्जेक्शन लगवाये ही समस्त दाँत उखड़वाये। कल्पना कीजिए कितनी वेदना हुई होगी। परन्तु उनके मुख पर किंचित भी दुखदर्द की रेखा दिखाई नहीं पड़ी। इतना ही नहीं जबलपुर के समीप गाडरवाडा शिबिर में वे पधारे और उन्होंने सबके अंदाजों के विपरीत दो घंटे तक लगातार धाराप्रवाह भाषण दिया।

श्री गुरुजी का यह मनोबल तथा शरीर पर नियंत्रण लोगों को आश्चर्य में डाल दिया करता था।

- बाबासाहेब आपटे

### ४. उस अघोरी प्रयोग में भी शांत

श्री गुरुजी के दाहिने हाथ में नित्य वेदना हुआ करती थी। बहुत सारे उपायों के बाद भी परिणाम शून्य ही था। तब आयुर्वेदिक चिकित्सकों की सलाह से चाँदी की तप्त शलाका से उपचार करना तय हुआ।

१९५२ में पुणे में इस प्रयोग के लिये श्री गुरुजी आये। उपचार के लिये वे बैठे तब प्रसन्न थे। हास्य विनोद करने लगे। तप्त शलाका उनके कंधे पर रखी गई। चर्चर्च आवाज के साथ चमड़ी जलने लगी। उसकी दुर्गन्ध भी आने लगी। परन्तु श्री गुरुजी शांत थे, प्रसन्न थे और हास्यविनोद कर रहे थे। एक दो बार नहीं अपितु बत्तीस बार तप्त शलाका कंधेपर जगह जगह रखी गई। श्री गुरुजी के शरीर से तनिक भी प्रतिक्रिया हुई नहीं, न उनके मुखपर वेदना के लक्षण दिखाई पड़े। मानो, उन्होंने अपने को शरीर से अलग कर दिया हो।

- ह.वि. दात्ये

### ५. शरीर पर अधिकार

श्री गुरुजी का अपने शरीर पर विलक्षण अधिकार था। वे उससे कितना भी कार्य ले सकते थे। संघशिक्षा वर्ग में एक बार दोपहर के बौद्धिक वर्ग के लिये आते समय उन्होंने कहा - चलो तुम्हारा चिकित्सा विभाग देखा जाये।

मैंने प्रसन्नता से कहा - चलिये। अस्वस्थ स्वयंसेवकों को भी आप का दर्शन मिल जायेगा।

वहाँ सभी को देखकर उन्होंने डॉक्टर से थर्मामीटर देखने के लिये माँगा और स्वयं को लगाया। मैं उसे कौतुक समझकर देखने लगा, पर अरे यह क्या? गुरुजी को 902 डिग्री का ज्वर निकला। मैं सोचने लगा कि अब क्या होगा? मेरे चेहरे पर चिन्ता की छाया देखकर वे बोले - अरे! चिन्ता कैसी? बौद्धिक वर्ग होगा। बौद्धिक वर्ग से ज्वर का क्या मतलब?

इतना कहकर श्री गुरुजी सीधे मंडप में चले गये। एक बार भी माथे पर हाथ नहीं गया और न किसी इंगित से कोई जान सका कि यह बौद्धिक वर्ग 902 डिग्री ज्वर में हो रहा है। मैं तो इसी को व्यावहारिक अध्यात्म समझता हूँ।

- रज्जू भैया

## ६. बिच्छू का दंश पाँव में है मस्तिष्क में नहीं!

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में पढ़ते समय एक दिन श्री गुरुजी अपना एक पाँव बकेट में डाले हुये पुस्तक पढ़ने में मगन थे। सहसा एक मित्र आया। उसके पूछने पर गुरुजी ने उसे बताया कि पाँव में बिच्छू ने डंक मारा। इसलिये पोर्टेशियम परमैंगनेट के द्रावण में मैंने पाँव रखा है। उसका विष धीरे धीरे निकल जायेगा। मित्र को बड़ा आश्चर्य लगा। कष्ट, वेदना आदि के बारे में पूछने पर सहजता से गुरुजी बोले - 'अरे भाई बिच्छू ने पाँव को डंक मारा है, मेरे मस्तिष्क को तो नहीं मारा। तो भला पुस्तक पढ़ने में दिक्कत कैसी?'

मित्र देखते ही रह गया। बाद में पूरे विद्यार्थी मित्रों तथा अध्यापकों में इस घटना की कई दिनों तक चर्चा होती रही।

## ७. उन्मत्त उपद्रवों में उनका धैर्य

३० जनवरी १९४८ को दिल्ली में म. गाँधी की हत्या हुई। उस घटना की तीव्र और क्रोधित प्रतिक्रियाएं सारे देश में उठने लगीं। शीर्षस्थ नेताओं से लेकर स्थानीय कार्यकर्ताओं तक सभी रा.स्व.संघ के विरोध में उत्तेजनापूर्ण शब्दों में आग उगलने लगे। महाराष्ट्र में और विशेषकर नागपुर में इन प्रतिक्रियाओं ने उपद्रव और हिंसा का रूप धारण किया। गांधीजी की हत्या हुई, उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन श्री गुरुजी चेन्नई में थे। वहाँ से ही श्री गुरुजी ने इस घटना का निषेध कर सांत्वना प्रकट करनेवाले तार पं. नेहरू, सरदार पटेल तथा देवदास गांधी को भेजे और वे नागपुर के लिये चेन्नई से निकल पड़े। नागपुर आते ही उन्होंने पं. नेहरू तथा पटेल इन दोनों को विस्तृत पत्र भेजे।

दि. १ फरवरी को नागपुर की परिस्थिति स्फोटक बनी। प्रक्षोभ बढ़ता गया। आद्य सरसंघचालक डा. हेडगेवारजी की समाधि के शिखरों को तथा तुलसी वृंदावन को उन्मत्त भीड़ ने तोड़ डाला। दोपहर में श्री गुरुजी के घर के अगल बगल भीड़ ने पथराव किया। उसी दिन शाम को चिटनीस पार्क में आमसभा हुई, जिसमें वक्ताओं ने उत्तेजनापूर्ण भाषणों से लोगों को उकसाया, भड़काया। कार्यकर्ता तथा अधिकारी श्री गुरुजी की सुरक्षा के लिये कटिबद्ध थे। भीड़ को आते देख संघ के अधिकारियों ने श्री गुरुजी की अन्यत्र व्यवस्था करने की योजना करके उनको वहाँ चलने की प्रार्थना की। कार्यकर्तागण भीड़ का प्रतिकार करने सिद्ध हो गये। परिस्थिति में तनाव हर क्षण बढ़ता जा रहा था। किसी क्षण कुछ भी हो सकता था। पर श्री गुरुजी शांत थे। उनका धैर्य बना हुआ था।

श्री गुरुजी ने कहा - लगता है आप लोग बाहर की परिस्थितियों और आपत्तियों के कारण उत्तेजित हो उठे हो। आप लोग अब यहाँ से जायें और मुझे शांतिपूर्वक रहने दें। मेरी चिन्ता आप बिल्कुल न करें। आप कहते हैं कि मैं अन्याय चलाऊँ, लेकिन क्यों? आज तक मैं जिस समाज के लिये कार्य करता आया हूँ, वह समाज यदि मुझे नहीं चाहता तो मैं कहाँ जाऊँ और क्यों जाऊँ? और न मेरी रक्षा में आप उपद्रवियों पर प्रत्याघात करें। जिस हिन्दू समाज के लिये मेरा सम्पूर्ण जीवन समर्पित है, उस समाज के बन्धु ही मेरे द्वारपर परस्पर संघर्ष करें, और अपने ही बन्धुओं का रक्त मेरे घर के सामने गिरे, यह कदापि ठीक नहीं। जो भी होना है, हो जाने दीजिये। अब मेरे सन्ध्यावन्दन का समय हो गया है। आप सभी लोग यहाँ से जाइये।

इतना कहकर श्री गुरुजी सन्ध्यावन्दन के लिये चले गये। संयोग से सभा समाप्त होने के कुछ ही मिनट पूर्व श्री गुरुजी के घर की ओर जानेवाले रास्ते बन्द कर दिये गये थे तथा उनके घरपर पुलिस का पहरा लगा दिया गया। इस संकटपूर्ण, तनावपूर्ण और प्रक्षुब्ध परिस्थिति में श्री गुरुजी के अतीव धैर्य का ही नहीं अपितु उनकी अनोखी दृष्टि का जो परिचय हुआ, वह इतिहास का एक बोधपृष्ठ सिद्ध हुआ।  
(श्री गुरुजी समग्र दर्शन खण्ड, २ प्रतिबंध पर्व, पृ.७,८,)

## ८. रक्षणकर्ता

१९६४ के अप्रैल मास में पूज्य श्री गुरुजी कुमाऊँ के प्रवास पर आये थे? उनके साथ प्रातः पिथौरागढ़ से चलकर हम लोग कोई दस बजे मायावती पहुँचे। आश्रमवासियों का सत्कारभाव, आश्रम की सुव्यवस्था तथा वहाँ का दैवी भावापन्न वायुमंडल था ही ऐसा कि साधारण व्यक्ति के मन में अद्भूत का उद्देलन उत्पन्न कर दे। तब फिर महर्षि विवेकानन्द और (उनके गुरुभाई) स्वामी अखण्डानन्दजी, एक की शिक्षा और दूसरे की प्रत्यक्ष दीक्षा को जीवन में चरितार्थ करने वाले साधक की अवस्था, उनकी तल्लीनता, उनकी भाव-विभोरता, बस देखते ही बनती थी। गुरुजी की वह तन्मयावस्था, वस्तुतः वाणी का विषय नहीं है।

रात्रि को चम्पावत में पड़ाव किया। उन दिनों सामरिक महत्त्व के कारण पिथौरागढ़ - टनकपुर मार्ग का डायरेक्टर जनरल ऑफ बोर्डर रोड (डी जी आर बी) ने अधिग्रहण कर उसे चौड़ा करना चालू किया था। यातायात एकमार्गीय ही चलता था, परन्तु निजी गाड़ियों और कारों पर यह प्रतिबंध लागू नहीं था। सड़क पर दोनों ओर मलवा पड़ा होने के कारण गाड़ियाँ चलाने में असुविधा थी। प्रातः चलने के पूर्व चाय पीते पीते श्री गुरुजी ने मुझे मिलाकर तीनों चालकों को पर्वतीय मार्गों में गाड़ी चलाते समय ध्यान रखने के लिये अनेक बातें ऐसी बतायीं, जो वैसी हमारे ध्यान में नहीं थीं। किसे पता था कि आगे आनेवाले खतरे से, वे भविष्यद्रष्टा हमें सचेत कर रहे हैं।

चलथी के प्रसिद्ध पुलपर पहुँचने के पहले ही, सैनिक वाहनों की एक श्रृंखला आयी। सड़क चौड़ी थी, फिर भी एक ट्रक पर 'ऑन टेस्ट' (परीक्षणार्थी वाहन) लिखा हुआ था। एक तीव्र मोड़ पर वह ट्रक इतना दायें मुड़ गया कि उसने पहले हमारी कार को टक्कर मारकर कोई एक गज हमारे बायें खड्ड की ओर ढकेल दिया। इस ओर की मुंडेर टूटी हुई थी। कुछ मलबे का ढेर सा पड़ा हुआ था। और उसके नीचे था हजारों फीट गहरा खड्ड। एक क्षण के लिये ही वह दृश्य दिखा-बायीं ओर की खिड़की खुली थी, मलबे पे खड़े वे देवता पुरुष कार को सहारा दे रहे थे। मलवा टिका रहा, खिसका क्यों नहीं? ये रहस्य आज तक समझ में नहीं आया। यदि कार सूत बराबर भी बायें बढ़ जाती अथवा गुरुजी एक इंच भी पीछे हटते तो .....

कुमाऊँ की पहाड़ी गोवर्धन बन गयी और उसको सहारा दिया, इस युग के योगी ने। 'कहो, रामनारायण ठीक हो न?' घबराये हुए चालक को उन्होंने सात्वना दी। दायीं ओर की खिड़की और मडगार्ड क्षतिग्रत हुए, पर चालक को खरोच भी न लगी। उनके ठीक पीछे मेरा बम्पर जा टकराया, कुछ क्षतिग्रस्त हुआ और अगली गाड़ी को पुनः एक धक्का लगा।

'अरे, टक्कर भी इतनी हल्की, जरा जोर से लगाते'-हँसते हुए मानो कुछ हुआ ही नहीं हो, ये शब्द उन्होंने कहे।

संघकार्य ईश्वरीय कार्य है यह प्रायः सुना करता था। आज ईश्वर को प्रत्यक्ष रक्षा करते देखा।

- घनश्यामदास

## ९. एक क्षण में गलतधारणा दूर

मुम्बई के एक प्रख्यात साहित्यकार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्सव में अध्यक्ष होकर नागपुर पधारे। संघ एवं श्रीगुरुजी के साथ यही उनका प्रथम परिचय था। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा -

जब मुझे यह सूचना मिली कि संघ के उत्सव में अध्यक्षीय कार्यवाही के लिए श्रीगुरुजी का निमंत्रण मिला है, तो मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था। यह इसलिये कि मैं तो संघ के लिये अत्यन्त अपरिचित था। श्रीगुरुजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे प्रबल हिन्दू संगठन के सेनापति हैं, यह बात मेरे मित्रों ने मजाक में कही और कहा - क्या उनके द्वारा एक पागल साहित्यकार को निमंत्रण? तुम इस पर विश्वास करते हो? तुम कैसे मूर्ख हो? नागपुर जाने

की भूल कदापि न करना। श्री गोलवलकर से भेंट तो दूर रही, तुम उनका दर्शन भी न कर सकोगे। वे सात घेरोंवाले किले में रहते हैं।

मित्रों ने मुझे बहुत सावधान किया किन्तु मैंने नागपुर जाने का निर्णय कर लिया। नागपुर स्टेशन पर उतरते ही दाढ़ी और लम्बे बालवाले व्यक्ति ने मेरा हार्दिक स्वागत करते हुए मुझे पुष्पमाला पहनायी। मैंने धीरे से एक व्यक्ति से पूछा, यह कौन है? उसने बताया कि ये ही श्रीगुरुजी हैं। इतना सुनना था कि मेरा सारा अस्तित्व पानी-पानी हो गया। मुझे मित्रों की बात याद आयी। परन्तु प्रत्यक्षतः श्रीगुरुजी की मुक्त हँसी, उनकी आत्मीयता और सादगी देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। हमारे जैसे लोग भी संघ के बारे में अज्ञानतावश गलत धारणा रखते हैं। और भी न जाने कितने रखते होंगे!

- हो. वे. शेषादि

## 90. अद्भुत स्मरण शक्ति

श्रीगुरुजी तिन्नेवेली नगर में गये थे। वहाँ एक दिन प्रातः काल वे रमणन् नामक स्वयंसेवक से भेंट करने गये। घर में वे उनके वृद्ध पिता से भी मिले। उन्होंने श्रीगुरुजी का यथोचित सत्कार किया। चायपान और बातचीत के बाद चलने के लिये तैयार गुरुजी ने जब उन्हें नमस्कार किया, तब वे बोले - आप के दर्शन से मैं धन्य हो गया। आपसे मेरी यह पहली भेंट है, परन्तु मैं स्वयं को कृतार्थ अनुभव करता हूँ।

गुरुजी ने कहा - दर्शन इत्यादि तो क्या, हम लोग अपने पवित्र कार्य के लिये मिलते हैं, यह हमारी पहली भेंट तो नहीं है।

रमणन के पिता - आप क्या कह रहे हैं? क्या इससे पूर्व भी हम मिले हैं? संघ से मेरा परिचय तो पिछले वर्ष ही हुआ है और इसी वर्ष आप पहली बार आये हैं।

गुरुजी ने उनसे पूछा - क्या आप नौकरी करते समय कभी नागपुर में रहे हैं?

उन्होंने कहा - हाँ।

श्रीगुरुजी - क्या आप कुछ दिन सरायपाली में थें ?

उनके हाँ करते ही श्रीगुरुजी ने कहा - जब आप सर्वप्रथम वहाँ आये तो घर न मिलने के कारण एक अध्यापक के यहाँ ठहरे थे न?

पिता बोले - हाँ, हाँ !

बिचारे वृद्ध सज्जन को लगा कि गुरुजी ज्योतिषी हैं या कोई जादूगर?

उन्होंने पूछा - पर यह सब आपको कैसे मालूम ?

गुरुजी ने कहा - उस घर में माधव नाम का 92, 93 वर्ष का एक छोटा लड़का था। याद आया आपको ?

पिताजी - हाँ, हाँ याद आया।

उनके ऐसा कहते ही गुरुजी ने कहा - मैं ही वह माधव हूँ।

वे सज्जन गुरुजी की स्मरणशक्ति देखकर दाँतो तले अंगुलि दबाते रह गये।

- पद्माकर भाटे

## 99. तीस साल बाद

सन 9६४० में जब प.पू.डाक्टरजी के मासिक श्राद्धदिन के निमित्त मैं नागपुर गया था, तब श्रीगुरुजी के साथ मेरा परिचय हुआ। सन 9६४२ में श्रीगुरुजी प्रथम बार कर्नाटक प्रान्त के प्रवास पर आये थे तथा अथनी में मेरे यहाँ ठहरे थे। उस समय मेरा बड़ा लड़का अण्णा बहुत ही छोटा था। श्रीगुरुजी ने उसके साथ परिचय कर लिया।

इस घटना के लगभग तीस वर्ष बाद विगत सन 9६७३ के फरवरी मास में श्रीगुरुजी पूना स्टेशन पर रेलगाड़ी में सवार हुये। स्टेशन पर उन्होंने मेरे बड़े लड़के को देखा तो उसे उसके नाम से संबोधित कर अपने निकट बुलाया। उन्होंने उससे पूछा - तुम अथनी के अण्णा गाडगील हो ना? तुम्हारे पिताजी विट्ठलराव कुशल तो हैं ?



मेरे पुत्र ने पूना से पत्र भेजकर मुझे उक्त घटना की सूचना दी। वह पत्र पढ़कर मैं गद्गद् हो गया। श्रीगुरुजी कैन्सर रोग से पीड़ित थे। फिर भी उनकी स्मरणशक्ति ज्योंकी त्यों बनी हुई थी। ३० वर्ष पूर्व एक छोटे बालक के साथ हुये परिचय को ध्यान में रखकर, उन्होंने उसे पहचाना। वह उनकी अद्भुत स्मरणशक्ति तथा आत्मीयता का ही परिचय था।

- विडलराव गाडगील

## १२. मेरा लंगोटिया दोस्त

जिन्हें आज सारा भारत श्रीगुरुजी कहता है, उन्हें मैं बचपन में 'मधु' कहता था। हम दोनों एक कक्षा में साथ साथ पढ़ा करते थे। खंडवा के राजकीय हाईस्कूल के छात्र थे।

एक बार नगर में आये कार्लेकर ग्रैण्ड सर्कस देखने हम दोनों गये थे। उस सर्कस में पिंजरे के अन्दर दो बन्दर थे। एक काले मुँह का और दूसरा लाल मुँह का। उन दोनों की उछल-कूद देखने लगे। बन्दरों की उछल-कूद देख करके मधु भी उसी तरह उछल-कूद कर रहा था। देखनेवालों की भीड़ में दो अंगरेज सैनिक थे।

मधु की उछल-कूद देखकर एक सैनिक ने चिल्लाकर कहा - 'अरे ओ, कलमुहे बन्दर'।

मधु ने उस अंगरेज को तपाक से जबाव दिया - 'अरे ओ, लालमुहे बन्दर'।

सैनिक ने लपककर मधु को पकड़ना चाहा, पर मधु उसके हाथ नहीं आया। फिर उसने मधु का पीछा किया, पर मधु तो भीड़ में गुम हो गया था।

बचपन के दिनों की उन बातों का एक जमाना गुजर गया। ३५ साल बाद मधु को मैंने इन्दौर में देखा, संघ के सरसंघचालक के रूप में। बचपन में मुझे इस बात की कभी एक क्षण के लिये भी कल्पना नहीं आयी कि भविष्य में मधु का व्यक्तित्व इस प्रकार निखर उठेगा और वह लाखों स्वयंसेवकों का श्रीगुरुजी बन जायेगा।

मेरे मन में बड़ा संकोच था कि अब इससे मिलूँ या न मिलूँ। पता नहीं मधु मुझे पहचानेगा या नहीं !

परन्तु मेरी इच्छा के विपरीत मेरा एक मित्र मुझे घसीटकर वहाँ ले गया, जहाँ वे ठहरे थे। उस कमरे में वे संघ के कार्यकर्ताओं से बातचीत कर रहे थे। कमरे में जाकर मैं एक किनारे बैठ गया।

पर यह क्या हुआ? मुझे वहाँ बैठे-बैठे एक दो मिनट ही बीते होंगे कि वह 'मधु' अपने उच्च आसन से उठकर, उतरकर धीरे से सीधे मेरे पास आया और मुझे अपनी बाँहों में कस लिया। बाँहों में भींचे भींचे ही उन्होंने उपस्थितों से कहा -

“यह मेरा प्रिय मित्र बाबू, मेरा लंगोटिया दोस्त !”

मेरा हृदय भर आया था, मैं कुछ बोल नहीं सका। बस, हृदय की उमड़न आँखों की राह से बहने लगी, बरसने लगी।

- वामनजी पंडित

## १३. पुराने मित्र से आलिंगन

नागपुर में एक दिन श्रीगुरुजी रुईकर पथ के दायीं ओर के पदपथ से जा रहे थे। हम लोग भी साथ थे। श्री परशुरामपंत बढिये का मकान उसी पदपथ से सटा हुआ था। श्री बढिये जी अपने घर के बाहर ही खड़े हुए थे। श्रीगुरुजी ने तीन चार मिनट तक उनसे बातचीत की और आगे बढ़े।

कुछ दूरी पर सिलाई की एक दुकान थी। उसके मालिक दुकान के सामने खड़े थे। मेरी उनसे पहचान थी। वे उत्कृष्ट मल्लखम्भपटु थे। हम दोनों ने एक दूसरे को अभिवादन किया। मैं आगे बढ़ा ही था कि अपने पीछे हँसी का ठहाका सुनकर मैं टिठक गया। मैंने पीछे मुड़कर देखा कि श्रीगुरुजी सिलाई-दुकान के मालिक से गले लगकर मिल रहे थे। चकित मन से मैं सोच रहा था कि श्रीगुरुजी की इस व्यक्ति के साथ मित्रता कैसी? मैं निकट गया। मैंने देखा कि दुकान के मालिक श्री नामपल्लीवार संकोच में पड़े हुए कह रहे थे - गुरुजी, आप क्या कर रहे हैं? कहाँ आप और कहाँ मैं, क्या कोई बराबरी है?

प्रसन्नवदन श्रीगुरुजी ने कहा - कितने वर्षों के बाद हम दोनों मिले रहे हैं। क्या तुम्हें याद है, जब हम दोनों नागपुर व्यायामशाला में मल्लखम्भ का अभ्यास किया करते थे? मुझे तुम्हारी मल्लखम्भ की छल्लोंगे अब भी स्मरण आती हैं। तुमसे मिलते ही वे सब पुरानी बातें याद हो आयीं।

श्री नामपल्लीवार ने गद्गद् स्वर में कहा, 'गुरुजी, आप जैसे बड़े व्यक्ति मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को नहीं भूले, यह मेरा सौभाग्य है!'

- डॉ. व. ग. पाँडे

## १४. समय की पाबन्दी

यह १९५२ की घटना है। भारत को स्वतंत्र कराने के उद्देश्य से 'अभिनव भारत' नामक जो एक क्रांतिकारी संघटना स्थापित हुयी थी, उसको अब स्वतंत्रता मिलने पर विसर्जित करने का निश्चय करके पुणे में चार दिन का समापन समारोह आयोजित किया गया था। उस समारोह में स्वातंत्र्यवीर वि.दा. उपाख्य तात्याराव सावरकर स्वयं चारों दिन उपस्थित थे। सेनापति पां. म. उपाख्य तात्या बापट, जो सेनापति बापट के नाम से परिचित थे, ने समारोह का संचालन किया था। इस वर्ष पुणे के संघशिक्षा वर्ग में आये हुए स्वयंसेवक सौभाग्यशाली रहे, क्योंकि उन्हें समारोह के सायंकालीन कार्यक्रम में उपस्थित रहकर गणमान्य नेताओं के विचारों को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ।

श्रीगुरुजी को इस समारोह में सम्मिलित होने का निमंत्रण भेजा गया था। श्रीगुरुजी की पुणे संघशिक्षा वर्ग में उपस्थित रहने की तिथि तथा इस समारोह की तिथियाँ एक ही थीं। समारोह के अंतिम चौथे दिन श्रीगुरुजी का भाषण था। श्रेष्ठ वक्ता व्यासपीठ पर विराजमान थे। केवल पाँच मिनट पूर्व श्रीगुरुजी सभास्थल पर पहुँचे। सावरकरजी ने श्रीगुरुजी का स्वागत करते हुए कहा, 'आइये माधवरावजी'।

अभिवादन करने के लिये ज्यों ही श्रीगुरुजी कुछ नीचे झुके, तो ही सावरकर जी ने अपना हाथ आगे बढ़ाया और श्रीगुरुजी को अपने समीप ही बिठा लिया।

समारोह में वक्ताओं की संख्या अधिक और समय कम, ऐसी स्थिति होने के कारण तथा विगत तीन दिनों का अनुभव ध्यान में रखकर सभा संचालक सेनापति बापटजी ने वक्ताओं पर समय का प्रतिबंध लगाया था। श्रीगुरुजी को भाषण के लिये दस मिनट का समय देकर बापटजी ने उन्हें भाषण के लिये आमंत्रित किया। निर्धारित समय के भीतर भाषण पूर्ण करने की सूचना बापटजी सभी वक्ताओं को दे रहे थे, परंतु श्रीगुरुजी को यह सूचना देते समय वे अपनी हँसी को रोक नहीं सके। श्रीगुरुजी, सावरकरजी तथा सारी सभा भी हँस पड़ी। भाषण के लिये खड़े होते ही श्रीगुरुजी ने अपनी घड़ी सेनापति बापटजी के सामने रख दी और उन्होंने अपना भाषण प्रारंभ किया।

जब सारी सभा उनका भाषण सुनने में विभोर थी, उसी समय श्रीगुरुजी ने अपना भाषण समाप्त किया। दस मिनट पूर्ण होने में अभी कुछ क्षण की देरी थी। सेनापति बापट तथा सारी सभा मानो और दस पंद्रह मिनट उनका भाषण सुनने को उत्सुक दिखाई देती थी। स्वयं सावरकरजी तो बोल ही गये, 'अरे भाई, मेरे भाषण के दस मिनट माधवराव को दे देते तो अच्छा होता।'।

- ह.वि. दात्ये

## १५. जा बाबा, जा

उस दिन अपरान्ह (दोपहर) में श्रीगुरुजी को नागपुर से प्रवास के लिये प्रस्थान करना था। सुबह आठ बजे एक स्वयंसेवक दौड़ता हुआ कार्यालय आया और उसने श्रीगुरुजी को सूचना दी कि पूजनीया ताई को (श्रीगुरुजी की माताजी) पक्षाघात का झटका लगा है।

हम सब लोग नागोबा गली में स्थित ताईजी के मकान की ओर दौड़ पड़े। पूजनीया ताई स्नान करके नित्यक्रम के अनुसार पार्थिव पूजा करने जा रही थीं, इसी बीच उन्हें यह झटका आया। प्राथमिक उपचार के बाद डा. पांडे ने कहा, 'अब थोड़ी गर्म कॉफी लेकर ताई को लेते रहना चाहिये। कुछ न कुछ गर्म पेय पेट में जाना आवश्यक है।'।

किन्तु ताई ने संकेत मात्र से इन्कार किया और सूचित किया कि उस अवस्था में भी पार्थिव पूजा किये बिना वे कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकतीं। पहले ही दुर्बलता, उसमें यह झटका, ऐसी अवस्था में हाथ में पार्थिव लिये अधिक

देर तक पूजा करना संभव नहीं था। किन्तु ताई के आग्रह पर मधु टिकेकर शुचिर्भूत होकर सामने आये। उन्होंने सारा कार्य सम्पन्न करने पर ताई ने थोड़ी कॉफी ली। किन्तु उनकी स्थिति गंभीर ही थी। कार्यालय में चर्चा चल पड़ी कि इस गंभीर स्थिति में श्रीगुरुजी के लिये नागपुर छोड़ना उचित नहीं रहेगा। पता नहीं अकस्मात् कब क्या हो जाये? ट्रेन के समय से थोड़े समय पूर्व श्रीगुरुजी ताई के सामने जाकर खड़े हुये और उन्होंने पूछा-‘ताई, मैं जाऊँ?’

उस अवस्था में भी ताई ने अति स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया - ‘जा बाबा, जा !’

‘ताई, मैं जाऊँ?’ यह सदैव पूछते रहने के लिये ही तो इस महापुरुष ने ताई की गोद में जन्म लिया था और, ‘जा बाबा, जा’ ऐसा प्रसाद जीवन भर देते रहने के लिये ही उस महासाध्वी ने नौ मास तक गर्भधारण के कष्ट सहन किये थे।

- दत्तोपंत टेंगडी

## १६. उस अभिनन्दन योजना से गहरी व्यथा

रा. स्व. संघ पर प्रतिबंध लग जाने के कारण संगठन की आर्थिक स्थिति अत्यंत कठिन हो गयी थी। ऋण का जो बहुत बड़ा भार था, वह अलग से चिन्ता का विषय था। श्रीगुरुजी के प्रति जनसाधारण की जो श्रद्धा भावना थी, उसको ध्यान में रखते हुए संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मंडल ने सन १९५६ में एक निर्णय लिया। इस निर्णय के अनुसार श्रीगुरुजी के सार्वजनिक अभिनन्दन की एक योजना बनायी और श्रद्धानिधि के रूप में उन्हें थैली भेंट करना निश्चित हुआ। श्रीगुरुजी की पूर्व सम्मति के बिना ही केन्द्रीय कार्यकारी मंडल ने यह निर्णय ले लिया था। श्रीगुरुजी की स्वीकृति लेने के लिये मंडल ने अपनी योजना का विवरण उनके सामने रखा। श्रीगुरुजी के लिये यह एक धर्मसंकट की स्थिति थी। प्रशंसा, सराहना, अभिनन्दन आदि से जिनका जीवन सदा सर्वदा अतिदूर रहा, वे भला क्यों कर ऐसे कार्य के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान करें। परन्तु संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मंडल के निर्णय की अवहेलना भी कैसे की जाये? व्यक्तिगत सम्मान के प्रति अत्यधिक वितृष्णा रहने पर भी संगठन के आज्ञाकारी स्वयंसेवक के रूप में श्रीगुरुजी ने अपनी स्वीकृति दे दी।

स्थान स्थान पर श्रीगुरुजी की जयजयकार हुई, सार्वजनिक अभिनन्दन हुए, पुष्पवृष्टि हुई तथा लगभग २१ लाख रुपयों की श्रद्धानिधि के अर्पण के रूप में यह योजना सम्पन्न हुई।

अभिनन्दन कार्यक्रम सम्पन्न हो जाने पर अंत में प्रमुख कार्यकर्ताओं का एक कार्यक्रम हुआ, जिसमें श्री गुरुजी के हृदय की अन्तर्वेदना फूट पड़ी। व्यक्तिगत सत्कार के कारण उनके आहत हृदय की व्यथा जिन किंचित् शब्दों में व्यक्त हुई, उन मर्मभेदी शब्दों ने सारे कार्यकर्ताओं को रुला दिया। उनके कथन का भाव यह था -

‘संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवारजी के जीवनकाल में उनके गले में पुष्पमाला डालने का साहस कभी किसी संघबन्धु ने नहीं किया। केवल उनके शवयात्रा के समय ही उनके शव पर पुष्प चढ़ाये गये और मैं ऐसा अभाग कि उन्हीं के आसन पर आसीन मुझको मेरे ही स्वयंसेवक फूलमालाओं से लादकर मेरा अभिनन्दन करके मेरी जयजयकार कर रहे हैं। इससे बड़ा दुर्भाग्य मेरा और क्या होगा ! पूज्य डा. हेडगेवारजी के ५१ वर्ष की अल्पायु में जीवनलीला समेट लेने पर उनपर पुष्प चढ़ाये गये थे और मेरे आयु के भी ५१ वर्ष पूरे होने पर मेरे जीवनकाल में यह आयोजन किया जा रहा है।’

वातावरण अत्यधिक व्यथापूर्ण हो गया था। अतः श्रीगुरुजी ने विषय बदला और वातावरण की गंभीरता को कम करते हुए व्यक्तिपूजा, सस्ती नारेबाजी, छिछली प्रचार प्रणाली आदि का त्याग करने की प्रेरणा दी।

- भीमसेन चौपड़ा

## १७. क्या फर्क पड़ता है?

श्रीगुरुजी यह कभी अनुभव नहीं होने देते थे कि वे एक साधारण व्यक्ति से कुछ अलग हैं अथवा अधिक हैं। वास्तविकता तो यह है कि साधारण व्यक्ति के स्तर से उनका स्तर बहुत ऊँचा था, पर यह उनके व्यवहार की विशेषता कहें या यह उनके स्वभाव का अंग बन चुका कहें कि असाधारण होकर भी वे साधारण व्यक्ति के समान ही व्यवहार करते थे। जब हम दोनों जेल में थे तब मैं उनसे पूर्व स्नान कर लिया करता था। पहले दिन स्नान के बाद मैंने अपने गीले कपड़े पड़े रहने दिये। मैंने यही सोचा कि पूजापाठ से निवृत्त होकर इन गीले कपड़ों को धो लूँगा।

पूजा के समाप्त होने पर मैं स्नानगृह में गया तो मैं चकित रह गया। श्रीगुरुजी ने मेरे कपड़े धो डाले थे। जब मैंने इसका प्रतिवाद किया तो श्रीगुरुजी बोले - 'इससे क्या फर्क पड़ता है? हम दोनों को यहाँ काम ही क्या करना है?'

यह घटना पहले दिन की है, इसके बाद तो दूसरे दिन से मैं पूजा के पूर्व ही कपड़े धोने लगा।

- बाबासाहब घटाटे

### १८. श्रीगुरुजी का घर

नागपुर में मैं उनके घर गया हूँ। एक टूटा, फूटा-सा निर्धनों का-सा छोटा-सा किराये का घर था। केवल माता-पिता थे, न भाई, न बहिन, न कोई सगा, न सम्बन्धी। माता-पिता के संतोषार्थ प्रवास से लौटते तो एक-दो बार घर पर जाते। माता-पिता परम सात्विक, भोले-भाले। उस घर को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वह इतने ख्यातनामा महापुरुष का घर है। माता-पिता जब तक जीवित रहे, उस घर से सम्बन्ध बना रहा। उनके देहान्त के पश्चात् संघ कार्यालय का एक कोना-यही उनका निवास, कार्यालय तथा सब कुछ था। त्याग की वे सजीव मूर्ति थे।

तृष्णा उनके समीप फटकने नहीं पाती थी। न घर की कामना, न परिवार की कामना, न धन की कामना, न लोकेषणा की कामना। पद, प्रतिष्ठा, प्रमदा तथा कीर्ति जो लोकधर्म तथा जैव धर्म है, उनसे वे बड़ी सावधानी से बचे रहते थे।

- संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

### १९. राष्ट्र ही उनका घर था।

पं. मौलिकचंद्रजी शर्मा से श्रीगुरुजी के बारे में चर्चा चल रही थी। वे कुछ ऐतिहासिक घड़ियों का पुनरावलोकन कर रहे थे और अपनी श्रद्धांजलि मुझसे लिखवा रहे थे। वे शब्द बोलते जाते, उस महापुरुष का स्मरण करके बीच-बीच में उनकी आँखें डबडबा जातीं। कभी कभी वे फफक पड़ते थे।

तीन बार रुमाल निकालकर उन अश्रुबिंदुओं को समेटने का प्रयास किया, किन्तु जब जेल से रिहा होने के बाद श्रीगुरुजी के नागपुर पहुँचने पर उनकी माताजी के दर्शनों की स्मृति उन्हें आयी और उन्होंने उनके टूटे फूटे मकान की चर्चा प्रारम्भ की तब नेत्रों का बाँध टूट पड़ा। वे बोले-श्रीगुरुजी आदमी नहीं, देवता थे, ऋषि थे, भारतीयता की प्रतिमूर्ति थे। लोकमान्य तिलक ने मकान बनवाया, मालवीयजी भी अच्छे मकान में रहते थे, किन्तु उस महापुरुष के पूज्य माता-पिता उस टूटे फूटे मकान में ही रहते थे।

उन्होंने राष्ट्र को ही अपना घर समझा।

- शिवकुमार गोयल

### २०. स्वयंसेवक के प्रति वात्सल्य

श्रीगुरुजी के कारागार से मुक्त होने के बाद की घटना है। उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के कार्यकर्ताओं का एक त्रिदिवसीय शिविर कार्यक्रम धर्मापुर में हुआ। जाड़े के दिन थे। धर्मापुर शहर से बहुत दूर था। वहाँ पर एक छोटा सा पक्का कमरा था, जहाँ श्रीगुरुजी के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। बिजली न होने के कारण मिट्टी के तेल का एक लैम्प रखा था। उस कमरे के दरवाजे पर तथा आसपास रक्षक के रूप में कुछ स्वयंसेवक नियुक्त किये गए थे।

उस कमरे से तनिक सी दूरी पर हमारा भोजन विभाग था। भोजन के लिये कोई रह तो नहीं गया यह देखने के लिये भोजन विभाग प्रमुख के नाते मैं उस कमरे की ओर गया। रात्रि के बारह बजे होंगे। श्रीगुरुजी कमरे में विश्राम कर रहे थे और द्वार पर एक स्वयंसेवक हाथ में दण्ड लिये रक्षक के रूप में खड़ा था। खड़े खड़े शायद थक गया होगा, फिर बैठ गया और फिर वह बैठे बैठे सो गया।

लगभग एक बजे गुरुजी उठे और कमरे के बाहर आये। उन्होंने देखा कि वह द्वार रक्षक स्वयंसेवक बैठे बैठे सो गया है तो उन्होंने धीरे से अपना कम्बल लाकर उस स्वयंसेवक के ऊपर से ओढ़ा दिया। उस स्वयंसेवक को थोड़ी गर्मी और मिल गयी और वह जाड़े की उस रात में आराम से सो गया।

एक संघ अधिकारी प्रातः तीन चार बजे के आसपास सभी ओर देखरेख करते हुए उस ओर आये। वहाँ उन्होंने देखा कि वह द्वार रक्षक स्वयंसेवक सो रहा है और अधिक समीप जाकर देखा तो दिखा कि वह स्वयंसेवक गुरुजी की कम्बल ओढ़े हुए सोया है और गुरुजी कमरे के अन्दर लैम्प के पास बैठकर पुस्तक पढ़ रहे हैं। उन्होंने उस स्वयंसेवक को जगाया तो श्रीगुरुजी को कुछ आहट लगी। श्रीगुरुजी कमरे से निकलकर बाहर आये और कहा - अरे भाई। सोने दो बिचारे को।

वह स्वयंसेवक शर्म के मारे सिर नीचा करके बहुत पश्चाताप करने लगा। उससे श्रीगुरुजी ने कहा - कोई बात नहीं। आगे से ध्यान रखना।

स्वयं रातभर ठण्ड खाकर श्रीगुरुजी ने उस स्वयंसेवक को अपना कम्बल ओढ़ा दिया अपनी चिन्ता नहीं की। भोजन विभाग का दायित्व मुझे दिया गया तब श्रीगुरुजी के बौद्धिक सुन नहीं पाऊँगा, इसका मन में थोड़ा रंज था। पर इस घटना ने उनके बौद्धिकों का निचोड़ जीवन में उतार दिया। श्रीगुरुजी ने उस स्वयंसेवक को न डाँटा फटकारा, न कोई उपदेश किया। परन्तु अपने व्यवहार से जो संस्कार उस स्वयंसेवक के तथा हम सबके जीवनो में उतारा वह क्या कम बौद्धिक था।

- सीताराम गुप्त

## २१. चिड़िया में दिवंगत प्रचारक को देखा

केशव दुर्ग, मथुरा के निकट स्थित धर्मशाला की छत पर शामियाना लगा है। प्रचारकों की बैठक चल रही है। आसन पर विराजमान हैं पूज्यश्रीगुरुजी। मुक्त हँसी, दैदीप्यमान मुखमंडल; दिव्यता सर्वत्र व्याप्त है। उनकी अमृतवाणी सुनने के लिये लालायित कार्यकर्ता दत्तचित्त होकर बैठे हैं।

अकस्मात् पंडाल के बाँसों पर बैठी एक चिड़िया चहचहा उठी। कार्यकर्ताओं का ध्यान टूट गया। चहचहाट उन्हें अखरने लगी। ऐसा क्यों न होता? अमृतवाणी सुनना कठिन हो रहा था। क्षण पर क्षण बीतते गये। चहचहाट जारी रही। आखिर कार्यकर्ताओं का धैर्य टूट गया। उनमें से एक ने उठकर चिड़िया को उड़ा दिया। परन्तु यह क्या? वह एक बाँस से उठकर दूसरे पर चली गयी। वहाँ से उड़ा दिया गया तो उसने पुनः बाँस बदल दिया। कार्यकर्ता बेचैन थे। विघ्न पड़ते देखकर श्रीगुरुजी बोले उठे “रहने दो, रहने दो।”

इस वाक्य को कहते-कहते उनका गला भर आया। आँखों में पितृस्नेह झलक उठा। एकटक दृष्टि से चिड़िया की ओर देखते हुए बोल उठे-“ऐसा लगता है कोई दिवंगत प्रचारक चिड़िया के रूप में हमारे मध्य में उपस्थित है। उसे बैठा रहने दो। तंग न करो ....।”

सुनते ही बैठक का वातावरण विलक्षण दिव्यता से भर गया। एक एक कार्यकर्ता की असीम आत्मीयता प्रचारकों के मध्य साकार हो उठी थी। हम सभी हैरान रह गये। श्रीगुरुजी की वाणी सत्य सिद्ध हो गई। उनके एक वाक्य ने संगठन मंत्र की दीक्षा दे दी थी।

- राणाप्रताप

## २२. घृत सेवन कैसे करूँ

विदर्भ के प्रान्त अधिकारी तथा ख्यातनाम विधिज्ञ श्री नारायणराव उपाख्य बाबासाहेब धनागरे, बाशीम इनको लिखते हैं। (पत्र -२०-७-१९५५)

मेरे लिये भेजा गया घी प्राप्त हुआ। आहार में अधिक घृतसेवन की आपकी सूचना पूर्णतः उचित है। प्रयत्न करूँगा। बाधा केवल मेरे मन की ही है। मेरे चारों ओर के आत्मीय जनों को खाद्य-पेय का सुख है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। सारी परिस्थिति ही वैसी है। ऐसी स्थिति में मेरी मनःस्थिति अत्यंत विचित्र होती हुई, मैं अनुभव करता हूँ तथा शरीर को सुदृढ़ रखने को आवश्यक परंतु सबको दुर्लभ अन्नपदार्थ गले के नीचे उतारना असम्भव होता है। इसका क्या उपाय है? ऐसा स्वभाव क्यों और कैसा बना, कह नहीं सकता, परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव ऐसा है। फिर भी प्रयास करूँगा। इस प्रयत्न में सफलता मिलने की आशा बहुत कम है।

- पत्ररूप गुरुजी

### २३. इस शरीर के लिये प्रार्थना नहीं

श्रीगुरुजी उन दिनों कोट्टाइकल (केरल) में भर्ती थे - उपचार के लिये। तेल-धारास्नान (ऑयल बाथ) की प्रक्रिया चलती थी। डॉक्टर थे श्री माधव परलकर। एक दिन जब वैद्यजी आये तो उन्होंने धूप-दीप जलाया, प्रार्थना की। फिर श्रीगुरुजी से उन्होंने कहा - आप भी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिये भगवान से प्रार्थना कर लें।

श्रीगुरुजी तैयार नहीं हुए। स्पष्ट मना करते हुए उन्होंने कहा - आप लोग जो भी करें मैं बीच में नहीं पड़ूंगा। परन्तु अपने इस नश्वर शरीर के लिये भगवान से क्या प्रार्थना करना। इस शरीर से वह जितना काम कराना चाहता है, करायेगा। और जब देखेगा कि मेरा काम पूरा हो गया है, तो वापस ले लेगा। स्वास्थ्य लाभ के लिये मैं प्रार्थना नहीं करूंगा।

मैं सोचता रहा कि श्रीगुरुजी के ये शब्द जहाँ लोगों को चौकायेंगे वहीं एक नयी दिशा का बोध भी कराते हैं कि प्रार्थना निम्नदेह के स्वार्थ के लिये नहीं होनी चाहिए।

- वासुदेव पु. तेलंग

### २४. अनन्य ध्येयनिष्ठा

श्रीगुरुजी ने डिब्बे के नीचे पाँव नहीं रखा था कि मेरा शरीर नमस्कार करने के लिये झुक गया। उन्होंने अपनी दोनों बाँहों से मेरी बाजुओं को पकड़ लिया और कहा - यह क्या वीरजी?

मेरी बाजुओं को पकड़े पकड़े वे नीचे प्लेटफार्म पर आ गये। यों तो इनके मुखपर मुस्कान थी, परन्तु मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ कि उनकी आँखों में तेज नहीं, जो सुस्वास्थ्य के कारण उनके चेहरे पर प्रायः खेला करता है। शायद गाड़ी में नींद नहीं आयी हो। मैंने पूछ ही लिया - रात में नींद तो ठीक से आयी थी न?

श्रीगुरुजी - क्यों नींद को क्या हुआ है? जैसे पहले आती रही है, वैसे ही आज आयी। 'तो पूरी नहीं हुई' - ऐसा मेरे कहने पर - 'कभी भी नहीं होती'- यह था उनका उत्तर। मेरे प्रश्न पूछनेपर वे उत्तर देते रहे-

'अरे, डॉक्टर कहते हैं, इसी लिए विस्तर पर पड़ा रहता हूँ।

मुझे कुछ चिंता लगी। एक सुझाव मन में आया। मैंने उसे व्यक्त किया-'परन्तु आप को शारीरिक श्रम भी तो नहीं मिलता। नींद कैसे आये?' श्रीगुरुजी ने कहा - वीर जी! आप क्या कह रहे हैं? मैं दिनभर इधर से उधर भागता रहता हूँ। यह क्या कम शारीरिक श्रम है?

उसपर मैंने कहा - भागते तो आप हैं, लेकिन मोटर पर। शरीर आपका थकता नहीं, अतः नींद नहीं आती।

श्रीगुरुजी - तो ?

मैंने कहा - आप एक घण्टे सैर क्यों न किया करें? सुबह नहीं तो शाम को।

श्रीगुरुजी - तब शाम को सायं-शाखाओं में कैसे जा सकता हूँ?

उनका कहना ठीक था। शारीरिक श्रम के न होने से नींद नहीं आती, न आये। नींद नहीं आने से स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, न रहे। परन्तु संघकार्य तो होना ही चाहिये। ध्येय देव के प्रति कितनी अनन्य भक्ति थी ! मैं चुप हो गया। मेरी आँखें खुली की खुली रह गयीं। इतनी ध्येयनिष्ठा? अजमेर की बात याद आ गयी। वहाँ पर श्रीगुरुजी से प्रान्त कार्यवाह ने पूछा था कि 'आपका स्वास्थ्य कैसा है?' यह सुनकर श्रीगुरुजी बोले थे - 'अपने लोगों को स्वास्थ्य का विचार नहीं करना चाहिए। स्वास्थ्य का ध्यान रखनेवाला संघकार्य नहीं कर सकता।'

हम चलते चले जा रहे थे। श्रीगुरुजी मौन थे, उसे भंग करने के लिये मैंने विषय बदला और पूछा - 'आप को बंदी-केदार यात्रा का ध्यान कैसे आ गया?'

उन्होंने उत्तर दिया - मैं कहाँ जाना चाहता था? मैं तो इस यात्रा के लिये बाध्य कर दिया गया हूँ।

मैंने पूछा - आप जाना क्यों नहीं चाहते?

श्रीगुरुजी - इसीलिये कि इस जीवन का उद्देश्य एक ही है और वह है संघकार्य। तीर्थयात्रा में जितने दिन लगेगे, उतने दिन संघकार्य से छिन जायेंगे। इसका मुझे खेद है।

मुझे एक प्रकार से धक्का लगा। श्रीगुरुजी के हृदय में कर्तव्य की भावना कितनी प्रबल है। वह तीव्र भावना उनको तीर्थ पर जाकर प्रभु के दर्शन करने की भी इजाजत नहीं देती।

मुझे याद है, कुछ वर्ष पूर्व जब श्रीगुरुजी की पूज्य माताजी के देहान्त का समाचार मिला था, तब मैंने सहानुभूति का पत्र लिखा था। उसका जो उत्तर आया उस पत्र में इसी कर्तव्य भावना की व्याख्या है। उस चिट्ठी में श्रीगुरुजी ने लिखा-

‘आपका १६-८-१९६२ का स्नेहभरा पत्र मिला। भगवत्स्मरण करते करते शरीर त्याग करने के कारण सद्गति निश्चित मिलती है। अतः पूज्य माताजी के परलोक के संबंध में चिंता नहीं है। मेरा वही एक अतीव प्रबल स्नेह का बन्धन मुझे सांसारिक जीवन से बाँध रखनेवाला था। सो अब नहीं रहा है। जीवन में कुछ रिक्तता, कुछ सूनापन आया है। उसे कार्य से भरने का प्रयत्न कर रहा हूँ। अब यही एक आकांक्षा है। इसके लिये ही मातृसुलभ इच्छा-आशा-आकांक्षाओं को हृदय से सर्वथा हटाकर पूज्य ताई ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया था। उसने आशीर्वादपूर्वक प्रोत्साहन दिया था। इसी कार्य में रमकर मन शान्त हो सकता है, प्रसन्न रह सकता है।’

- प्रो. धर्मवीर

## २५. सद्प्रवृत्तियों के बीज सुरक्षित रखना ही संघकार्य

कैंसर के ऑपरेशन के पश्चात् जुलाई १९७० में श्रीगुरुजी नागपुर में हमारे घर ठहरे थे। दोपहर तक वे खाली रहते। तभी हम लोग उनके पास जाकर बैठते थे। हमारा श्रीगुरुजी से धरेलू सम्बन्ध रहा है। उनसे बातचीत करने में अथवा कुछ पूछने में कभी किसी प्रकार का संकोच नहीं होता था। वे हमारी जिज्ञासाओं को तुरन्त सुन्दर समाधान से शान्त कर दिया करते थे। एक बार मैंने उनसे पूछा -गुरुजी ! सन १९२५ में संघ की स्थापना हुई। आज ४५ साल बीत गये, लेकिन तब (१९२५) की तुलना में व्यावहारिक-नैतिक-आध्यात्मिक सभी दृष्टि से समाज का अधःपतन आज और अधिक हो चुका है। ऐसी स्थिति में क्या संघकार्य को ईश्वरीय कार्य कहना उचित होगा?

श्रीगुरुजी बोले - सन १९२५ की अपेक्षा आज नैतिक दृष्टि से अधःपतन अधिक है। उसे संघ रोक नहीं पाया, यह भी ठीक है, परन्तु दूसरी ओर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अधोगति की यह स्थिति जब समाज में विप्लव का रूप लेगी, तब संघ की वास्तविक उपयोगिता ज्ञात होगी। आज की परिस्थिति में नैतिक-धार्मिक-आध्यात्मिक मूल्य भले क्रमशः लुप्त होते चले जायें, तो भी सुप्त अंगार प्रज्वलित रखने का कार्य तो संघ को ही करना है। फिनिक्स पक्षी बार बार राख से ही उत्पन्न होता है। उसी प्रकार समाज की अधोगति में से अन्त में अपने हिन्दू समाज का पुनर्जन्म निश्चित ही होगा। अपने ग्रन्थों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। प्राचीन काल में हिरण्यकशिपु, भस्मासुर, त्रिपुरासुर, रावण, कंस, जरासंध आदि कई एक राक्षसी प्रवृत्तियों ने आतंक मचा रखा था। परन्तु सद्प्रवृत्ति कहीं-न-कहीं बची रही थी। इस कारण अपने समाज का बार बार उत्थान हुआ। आज की स्थिति देखकर भय का कोई कारण नहीं। हमें अपना कर्तव्य आत्मविश्वास से एवं सातत्य से करते रहना चाहिये। समाज के पुनरुत्थान के लिये सद्प्रवृत्तियों के बीज सुरक्षित करना ही संघकार्य है। ये बीज बचे रहे तो अपने हिन्दू समाज पर कितने ही भीषण आघात क्यों न हो, अपना भविष्य उज्ज्वल रहेगा। पौराणिक काल में धर्मग्लानि के अनेक प्रसंगों पर यह सद्प्रवृत्ति कहीं-न-कहीं बची थी। उसका संरक्षण ऋषि-मुनियों ने किया। जैसा ही वह ईश्वरीय कार्य था, वैसे ही संघकार्य भी ईश्वरीय कार्य है।

और भी एक बात है कि यदि हम अधिक परिश्रम एवं धैर्य से अपना काम बढ़ा सकें तो अधःपतन की अवस्था देखने का मौका ही नहीं आयेगा। तात्कालिक सफलता प्राप्त करना संघ का लक्ष्य नहीं है। समाज की अंतर्बाह्य शुद्धि करने की यह अति कठिन तपस्या है। ‘असुं अम्ही सुखाने पत्थर पायातील’ (बने हम पत्थर सुख से नींव के) यह हमारे गीत की एक पंक्ति है। मंदिर का कलश देखने का भाग्य प्राप्त हो तो ठीक ही है, परन्तु मंदिर की नींव का पत्थर बनने में हमारा अहोभाग्य होगा।”

- कृष्ण माधव घटाटे

## २६. निर्धारित कार्यक्रम के प्रति आग्रह

श्रीगुरुजी का सदा आग्रह रहता था कि किसी भी परिस्थिति में पूर्वनिश्चित कार्यक्रम रद्द न हो। शरीर में एक सौ पाँच डिग्री ज्वर होनेपर भी उन्होंने भाषण तथा बैठकों के कार्यक्रम निभाये हैं।

सन १९४७ के सितम्बर मास की बात है। भारत का विभाजन हुआ ही था। सिंध और पंजाब के हिन्दुओं पर भीषण विपत्तियाँ आयीं थीं। विस्थापित चले आ रहे थे। उनकी दुर्दशा सुनकर श्रीगुरुजी पंजाब दौरे पर आये थे। जोरदार वर्षा हो रही थी। नदी-नाले उफन रहे थे। श्रीगुरुजी को जालन्धर का कार्यक्रम संपन्न कर लुधियाना जाना था। किन्तु तेज वर्षा के कारण रास्ते रुके हुए थे। लुधियाना जानेवाले मार्ग पर पानी भरा हुआ था। अतः, कार से जाना संभव नहीं था। रेलवालों से पूछताछ की तो ट्रॉली का प्रबंध हो सकता है, ऐसा पता लगा। श्रीगुरुजी के साथ मैं और धर्मवीरजी हम तीनों ट्रॉलीपर सवार हुए। जैसे जैसे हम चहेडू तक पहुँचे। वहाँ एक नाला लबालब भरा हुआ था। पानी की गति तेज थी। चहेडू के रेल पुल का खम्बा तेज पानी ने बहा दिया था। पुल का ऊपरी भाग खड़ा था, किन्तु रेल पटरी के नीचे की जमीन बह जानेसे झूलते पुल की तरह लटक रही थी। ट्रॉलीवाले आगे जाने को तैयार नहीं थे। कई यात्री इस पुल पर रुके हुए थे।

अब क्या किया जाय यह हम सोचते ही रहे इतने में हमारे देखते ही श्रीगुरुजी उस झूलते पुल की पटरियों पर तेज गति से आगे बढ़े। साहस करके हम भी उनके पीछे चलते रहे। झूलते पुल और पटरी के दो-तीन फुट नीचे से पानी तेज गति से बह रहा था। वह दृश्य बड़ा ही भयावह था, पर श्रीगुरुजी ने पुल पार कर लिया था। हम भी उनके पीछे पार हो गये।

चहेडू स्टेशन पर एक रेलइंजन खड़ा था। उसमें बैठकर हम गुराया पहुँचे। गुराया स्टेशन पर एक मालगाड़ी खड़ी थी, जो लुधियाना की ओर जा रही थी। गार्ड ने हम तीनों को उसके डिब्बे में एक स्थान दिया और तीन घंटे में हम लुधियाना पहुँचे।

इसी प्रकार की घटना होशियारपुर से जालन्धर जाने की है। १९५६ की बात है। पंजाब के प्रवास में होशियारपुर पहुँचे तो वहाँ वर्षा ने बड़ा भीषण रूप धारण किया हुआ था। शाम का कार्यक्रम वर्षा में ही सम्पन्न हुआ। गुरुजी को आगे जालन्धर और लुधियाना के कार्यक्रम हेतु जाना था। रास्ते पानी से भरे थे। रेल की पटरियाँ कुछ स्थानों पर बह गयी थीं। तीसरे दिन वर्षा का जोर कम हुआ तब गुरुजी बोले - अब कल हम पैदल ही यहाँ से जालन्धर के लिये निकल पड़ेंगे।

श्री कुठियाला जी ने, जिनके घर गुरुजी ठहरे थे, स्टेशन बैगन तैयार की। उस पर दो साइकिलें रखी गयीं। साथ में भोजन भी दिया। इस प्रकार गुरुजी के साथ हम पाँच-छः कार्यकर्ता आगे बढ़े। रास्ते में वृक्ष टूटे हुए पड़े थे। उनको हटाकर आगे बढ़ते गये। होशियारपुर से जालन्धर की दूरी २७ मील है, लेकिन हम एक घंटे में केवल सात मील ही आगे पहुँचे। अब बीच में नसराला नदी आ गयी। रास्ते के पुल पर से नदी की बाढ़ का पानी तेज गति से बह रहा था। परन्तु रेल पुल पर पानी नहीं था। श्रीगुरुजी ने कहा -स्टेशन बैगन यहीं छोड़ दो, सामान उठा लो, और अब पैदल ही आगे बढ़ेंगे। - ऐसा कहकर, उन्होंने चट स्वयं एक बोझा उठा लिया। हम लोगों ने भी सामान उठा लिया। साइकिलें ले ली और रेल पुल पैदल पार कर गये।

वर्षा थमी हुई थी। हम लोग पैदल ही आगे चल पड़े। तीन मील जाने पर एक गाँव में पहुँचे। यहाँ एक ताँगा मिला। श्रीगुरुजी, मैं, और एक कार्यकर्ता ताँगे में सवार हुए। शेष कार्यकर्ता साइकिलों पर सामान लटकाये साथ हो लिये। परन्तु छः मील चलने पर ताँगे के घोड़े के बन्द टूट गये। ताँगा छोड़ देना पड़ा। श्रीगुरुजी फिर पैदल ही आगे चल पड़े। पाँच मील चलने के बाद जालन्धर के बैद्य श्री अमरनाथजी डोगरा और अन्य तीन कार्यकर्ता जीप के सहित हमें मिले। वे लोग श्रीगुरुजी के जालन्धर ठीक समय पर न पहुँचने के कारण चिन्तित थे, इसलिये जीप लेकर होशियारपुर जाने निकले थे। इस प्रकार प्रातःकाल को निकले हम दोपहर दो बजे जालन्धर पहुँचे पाये।

राष्ट्रव्यापी संघ कार्य के इन छोटे-बड़े कार्यक्रमों को इतनी तत्परता से सम्पन्न करने का श्रीगुरुजी का आग्रह रहा करता था। मार्ग में आनेवाली प्रत्येक बाधा को लौंघकर बढ़ने का उनका अपूर्व साहस था।

- माधवराव मूले



## २७. समाज सेवा यह सहज कर्तव्य

समाज के प्रति श्रीगुरुजी की भक्ति इतनी निश्चल थी कि किसी प्रकार का द्वैत उन्हें कभी स्वीकार्य ही नहीं हो सकता था। समाज सेवा को वे सहज कर्तव्य मानते थे। इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे तब हुआ जब वे वाराणसी में इलाज के लिये आये थे।

बिहार उस समय जबर्दस्त बाढ़ की चपेट में था। वहाँ के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता देशभर से सहायता जुटाने का प्रस्ताव लेकर श्रीगुरुजी से मिलने आये थे। उन कार्यकर्ताओं से उन्होंने विस्तृत जानकारी प्राप्त की और फिर उनसे पूछा- सभी स्वयंसेवक सेवा और सहायता के कार्य में जुट गये हैं या नहीं?

एक प्रमुख कार्यकर्ता ने कहा - स्वयंसेवक तो पूरी तरह जुटे हैं, पर साधनों का अभाव सेवा-कार्य में बाधक बन रहा है। अकेले बिहार में इतने बड़े प्रमाण पर तत्काल साधन जुटा पाना कठिन लगता है। श्रीगुरुजी ने कहा - अकेले बिहार से ही क्यों साधनों को जुटाया जाये और फिर डॉ. आबाजी थत्ते से कहा। इसके लिये पत्रक भेजकर सभी प्रदेशों में सहयोग जुटाने को कहो।

एक अति उत्साही कार्यकर्ता बीच में ही बोल पड़ा - पर गुरुजी इसमें तो बहुत देर हो जायेगी। अनेक दलों ने बड़े प्रमाण पर सहायता कार्य प्रारंभ कर दिया है। यदि हमारी सहायता में विलम्ब हुआ तो हम लोग उनसे पिछड़ जायेंगे।

उस कार्यकर्ता ने यह बात बहुत सहज ढंग से की पर श्रीगुरुजी उसे सुनकर कुछ व्यथित से हो गये।

फिर श्रीगुरुजी ने कहा - तो क्या तुम उन दुःखी बन्धुओं को सहायता इसलिये देना चाहते हो कि तुम लोग अन्य पार्टियों से पिछड़ न जाओ। यदि तुम्हारी भावना इसी संकुचित दलीय प्रेरणा पर आधारित है तो संघ का ऐसे काम से कोई वास्ता नहीं हो सकता। एकाएक वातावरण गम्भीर हो गया। अनजाने में ही क्यों न हो, पर वह कार्यकर्ता ऐसी बात कह गया था, जो संघ की विशुद्ध और सहज देशप्रेम की कल्पना से मेल नहीं खाती थी। उस कार्यकर्ता ने प्रायश्चित्त भरे स्वर में कहा - मुझसे गलती हो गयी। मेरा आशय यह नहीं था।

फिर श्री गुरुजी ने स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा - देखो भाई। हम लोगों को सहज भाव से अपने पीड़ित बन्धुओं की सेवा करनी है। यह अपना कर्तव्य है हमें इसके एवज में न वाहवाही लूटनी है, न वोट माँगने हैं। अतः इस प्रकार के सेवा-धर्म में कर्तव्य भावना ही प्रमुख होनी चाहिये।

- आलोक अवस्थी

## २८. स्वयंसेवक के परिवार में रुकने के अभ्यासी

संघ पर से प्रतिबंध हटने के बाद एक बार श्री गुरुजी मैनपुरी आये थे। सभी स्वयंसेवकों में बड़ा उत्साह था। इस छोटे से नगर में हम किस प्रकार उनका योग्य स्वागत कर सकें, यह हमारी प्रबल इच्छा थी। एक सुन्दर कोठी माँगकर हमने उनके ठहरने की व्यवस्था की थी। जिसकी कोठी में श्री गुरुजी के ठहरने की व्यवस्था की थी, वह व्यक्ति स्वयंसेवक नहीं था।

नगर के बाहर ही हमने श्री गुरुजी का स्वागत किया। बातचीत में ही यह जानकर कि आवास की व्यवस्था किसी स्वयंसेवक के परिवार में नहीं है, तो उन्होंने कहा - क्या तुम्हारे पास मकान नहीं है ? मैं वहीं ठहरूँगा।

मेरा मकान पुराना तथा जैसा तैसा ही था। मैं बड़े संकोच में पड़ गया। उन्होंने फिर कहा - क्या अपने परिवार में ठहराना नहीं चाहते?

विनयपूर्वक मैंने कहा - वह स्थान आपके लिये उपयुक्त नहीं है। इसलिये हमने आपकी आवास व्यवस्था अलग की है।

श्री गुरुजी मुक्त कंठ से हँसे और कहने लगे-चलो, अब तो वहीं रुकूँगा।

घर में प्रवेश करते ही उन्होंने कहा - कितना साफ सुथरा है। अरे, मैं धर्मशाला में नहीं परिवार में ही रुकने का अभ्यासी हूँ।

हम सभी गद्गद् हो गये।

- डा. रामेश्वरदयाल पुरंग

## २६. संघवार्ता पर बराबर निगाह

हम लोग समाचार पत्र पढ़ रहे थे। आदि से अंत तक पूरा अखबार पढ़ डाला। इतने में श्री गुरुजी आये और समाचार पत्र उठाकर इधर-उधर निगाह डाली। बातचीत के दौरान संघ संबंधी समाचार का जिक्र आ गया, जो इसी समाचार पत्र में छपा था। मैंने पूछा - समाचार है कहाँ? उन्होंने कहा - इसी अखबार में तो है। मैंने पूरा अखबार पढ़ा, पन्ने उलटे पर वह समाचार नहीं दिखा। मेरी हैरानी देखकर श्री गुरुजी ने वह समाचार दिखाया, जो बाजारभाव के पन्ने पर छपा था। मैं मन ही मन सोचने लगा, कहाँ छाप दिया है। हम लोग क्या व्यापारी हैं, जो इस पन्ने पर निगाह जाती? फिर दूसरे ही क्षण विचार आया- 'श्री गुरुजी भी तो व्यापारी नहीं है। फिर उनकी निगाह कैसे गयी? मैंने अपनी शंका रखी भी नहीं, पर शायद वे समझ गये।

श्री गुरुजी ने इस पर इतना ही कहा- भीड़ में भी माँ को अपना बच्चा दिख जाता है। और कोलाहल में भी अपने आत्मीय जनों के शब्द साफ समझ में आते हैं।

मेरी समझ में आ गया। ध्येय के साथ उनका यह तादात्म्य है जिसके कारण वे उस समाचार को देख सके। ..... श्री गुरुजी अक्सर कहा करते थे कि मैं तो समाचार पत्र नहीं पढ़ता, परन्तु मैं कहूँगा कि श्री गुरुजी ही समाचार पत्र पढ़ते हैं, और हम लोग तो उन्हें मात्र देखते हैं और बहुत देर तक देखते रहते हैं।

- पं. दीनदयालजी उपाध्याय

## ३०. जेल जीवन में भी संघकार्य

संघ पर प्रतिबंध लगने पर श्री गुरुजी को जेल में बंद कर दिया गया। वे काफी समय तक जेल में रहे, किन्तु जेल जीवन उनको संघकार्य से वंचित नहीं कर पाया। जेल से छूटने के बाद कुछ लोगों ने उनसे पूछा - जेल में आपका समय कैसे कटता था? बड़ा कष्ट होता रहा होगा?

श्री गुरुजी मुस्करा कर बोले - कोई कष्ट नहीं। मैंने अपना काम बंद नहीं किया। मेरे प्रवास का कार्य और शाखाओं की देखरेख का काम बराबर चलता रहा। एक एक प्रान्त, उसके एक एक जिले, वहाँ की एक एक शाखा का स्मरण करता था। फिर शाखाओं के एक एक स्वयंसेवक का विचार करता और उनके चेहरे अपनी मानसिक आँखों के सामने लाता। इस प्रकार पूरे भारत वर्ष का प्रवास और शाखाओं की देखरेख मैंने कर डाली।

- सुन्दर सिंह

## ३१ भगवाध्वज के समक्ष समर्पण ही गुरुदक्षिणा

श्री गुरुजी के १९५७ के महाराष्ट्र-प्रवास का यह एक प्रसंग है। सातारा जिले के एक गाँव में शासकीय प्रतिबंध के कारण खुली शाखा चलाना कठिन हो गया था। इस कारण वहाँ के कार्यकर्ताओं ने श्री गुरुदक्षिणा उत्सव संपन्न कराने हेतु एक स्वयंसेवक के घर सत्यनारायण पूजा का आयोजन किया, काफी लोगों को उसमें निमंत्रित किया गया था। पूजा की विधि संपन्न कराने वाले पुरोहितजी को यह बता दिया गया था कि इस निमित्त जो धन जमा होगा, उसे हम गुरुदक्षिणा के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को दे देंगे। इस बात को सहर्ष स्वीकार कर पुरोहितजी ने वह धन नहीं लिया।

श्री गुरुजी जब उस क्षेत्र में आये तो उन्हें श्री गुरुदक्षिणा उत्सव का विवरण बताया गया। इसके बाद उन्होंने बैठक में कहा - स्वयंसेवकों ने भगवा ध्वज का पूजन करके ध्वज के सम्मुख जो धन समर्पित किया हो, वही मात्र संघ की गुरुदक्षिणा है। स्वयंसेवकों ने यदि सत्यनारायण पूजा में धन अर्पित किया तो वह पूजा कराने वाले पुरोहित का ही है। सर्वप्रथम वह धन उस पुरोहित जी को दे दीजिए एवं इसकी सूचना तुरंत मुझे भेजिये।

- आ. वि. कुबेर

## ३२. पूर्ण स्वयंसेवक

सन १९३८ की घटना है। नागपुर के संघ शिक्षा वर्ग में आद्य सरसंघचालक पू.डाक्टर हेडगेवारजी के श्रद्धानिधि समर्पित करने का कार्यक्रम था। प्रत्येक स्वयंसेवक ने उस श्रद्धानिधि में अपनी अपनी राशि समर्पित की। किसने कितनी राशि समर्पित की यह अन्य दूसरे को जानने का कोई कारण नहीं था। एक स्वयंसेवक ने अपने हाथ

की घड़ी की सोने की चेन निकालकर अपनी श्रद्धा का प्रतीक इस नाते उसे श्रद्धानिधि में समर्पित किया। स्वाभाविक ही सभी स्वयंसेवकों ने उसकी प्रशंसा की।

उस संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी के नाते जब श्री गुरुजी का भाषण हुआ तब उन्होंने उस स्वयंसेवक द्वारा श्रद्धानिधि में जो सोने की चेन समर्पित की उसका उल्लेख करते हुए कहा - 'सोने की चेन श्रद्धानिधि में समर्पित करनेवाले स्वयंसेवक के मन में डाक्टर साहब के प्रति प्रेम, श्रद्धा और आदर है, यह तो मानना ही पड़ेगा। किन्तु उसका स्वयंसेवकत्व अभी अपूर्ण है। श्रद्धानिधि में अन्य सारे स्वयंसेवकों ने अपनी अपनी राशि समर्पित की, उसमें किसी का पृथक समर्पण दिखाई नहीं देता। किन्तु इस स्वयंसेवक ने अन्य सारे स्वयंसेवकों के अनुसार अपना समर्पण न करते हुए, विशेष रूप से, सबको दिखाई पड़े इस प्रकार का समर्पण किया। इसके पीछे उसकी पृथक अस्मिता तथा अहंकार की भावना सुप्तावस्था में विद्यमान है।'

श्री गुरुजी के इन शब्दों को सुनकर हम सभी स्वयंसेवकों को धक्का लगा। परन्तु दूसरे ही क्षण, स्वयंसेवक बनने के लिये स्वयं की पृथक अस्मिता और अहंकार सम्पूर्णतया विलीन करना कितना आवश्यक है, इसका अविस्मरणीय पाठ हम सबको मिल गया।

- दीनदयाल उपाध्याय

### ३३. परिचय - एक सरस कार्यक्रम

प्रायः सभी कार्यकर्ता - बैठकों में आरम्भ में परिचय का कार्यक्रम रहता ही है। सन १९४४-४५ में उत्तर प्रदेश के बरेली शहर के एक कार्यक्रम में श्री गुरुजी को मैंने सबसे पहले बहुत पास से देखा। बैठक थी बरेली जिले के पीताम्बरपुर स्थान की। मैं था शाखा का बस एक बाल-स्वयंसेवक, साथ ही सहशिक्षक। मैं उस समय कक्षा ६ का विद्यार्थी था। मुझसे भी उनका वही प्रश्न था। - क्या नाम है?

मैंने उत्तर दिया - श्याम बहादुर वर्मा।

श्री गुरुजी ने प्रश्न किया - 'बहादुर' नाम क्यों रखा है?

मैंने उत्तर दिया - हमारे घर में सभी बहादुर हैं।

यह ठीक बात सहज ढंग से कही गयी थी।

श्री गुरुजी ने विनोदपूर्वक कहा - घरपर सभी बहादुर होते हैं। प्रश्न तो बाहर का है।

सब हँस पड़े। मैं जैसे जैसे अपना परिचय पूरा करके अपने स्थान पर बैठ गया।

अगले वर्ष कार्यकर्ता बैठक में श्री गुरुजी ने फिर वही प्रश्न किया- नाम में 'बहादुर' क्यों रखा?

इस बार मैं सावधान था। मैंने बदलकर उत्तर दिया- बड़े होने पर बहादुरी के काम करने हैं, इसलिये।

श्री गुरुजी ने फिर विनोद भरे स्वर में पूछा - अच्छा, बड़े होने पर। और अभी? फिर उनके उन्मुक्त हास्य से वातावरण गूँज उठा। अपने कार्यकर्ता को उत्तर देने में कुशल होना चाहिये, उनकी यही दृष्टि सदा रहा करती थी।

एक बार लखनऊ के एक कार्यकर्ता ने अपना नाम बतलाया - 'माताबदल'।

श्री गुरुजी ने प्रश्न किया - माताबदल का क्या अर्थ है?

अपना बचाव करने के लिये उस स्वयंसेवक ने कहा - मेरे मातापिता अशिक्षित हैं, अतः यह दकियानूसी नाम रख दिया है। यह नाम अर्थहीन और हास्यास्पद है।

यह सुनते ही श्री गुरुजी ने कुछ कड़ेपन से कहा - वे मातापिता अशिक्षित भले ही हों, पर उन्होंने तो नाम ठीक ही रखा था। हाँ तुम अवश्य शिक्षित होकर भी नासमझ हो, जो ऐसा बोलते हो। अपने अज्ञान को ढकने के लिये अपने बड़ों में - 'अपने पूर्वजों में दोष देखना, दोष थोपना कहाँ तक उचित है? अरे भाई। माताबदल का अर्थ है श्री कृष्ण। माताबदल अर्थात् श्रीकृष्ण की माता दो बार बदली गयी थी। पहले देवकी से यशोदा और फिर यशोदा से देवकी।

सम्पूर्ण वातावरण इस व्याख्यापर मुग्ध ही नहीं, विमुग्ध था। बात- ही-बात में कितनी बड़ी बात हो गयी। एक छोटी सी बात के सहारे से उन्होंने कितनी महान शिक्षा दे दी कि अपने पूर्वजों पर और अपनी पुरातन बातों पर टिप्पणी मत करो, उसकी गहराई में उतरने की कोशिश करो।

### ३४. ईश्वरीय वाणी

१४ अगस्त १९७२ को सौभाग्यवश श्री गुरुजी से एकान्त में वार्तालाप करने का सुअवसर मिला। मैंने उनसे कुछ जिज्ञासाएँ की थीं, जिनका स्पष्ट समाधान उन्होंने किया था।

मैंने कहा - श्री लेलेजी ने श्री अरविन्द घोष को जब योग की दीक्षा दी थी, तब उन्हें बताया गया था कि वे जब भाषण देने के लिये खड़े हों, तब अपने मस्तिष्क को सब प्रकार के विचारों से मुक्त कर दें। उसके बाद अंतःकरण में विचार उठें, उन्हें ही बोलना प्रारंभ कर दें। वही ईश्वरीय वाणी होगी।

श्री गुरुजी - मस्तिष्क को विचारों से शून्य कर लेने के पश्चात् जो कुछ शेष रहता है, वह परमात्मा ही है और इसीलिये उस अवस्था में जो विचार आयेंगे, वे उसकी ही प्रेरणा से होंगे।

मैं - कभी कभी स्वयं मुझे ही ऐसा अनुभव में आया है कि जब बोलने के लिये खड़ा हुआ, तब मन में कुछ विषय ही नहीं सूझ रहा था। क्या बोला जाये यही समस्या थी। किन्तु अचानक तभी कोई ऐसा विचार मन में कौंध गया, जिसके बारे में पहले कभी सोचा भी नहीं था और वह विचार अपने मस्तिष्क की उपज है, ऐसा बिल्कुल भी नहीं लगता था। जब उस विचार की भाषण में अभिव्यक्ति हुई, तब सुनने वालों को भी बहुत अच्छा लगा, किन्तु स्वयं को यही लगता रहा कि यह विचार मेरा नहीं है। बाद में जब दूसरी बार उसी विचार को बोलने का प्रयत्न किया तो मामला जमा नहीं।

श्री गुरुजी - इसीलिये कि दूसरी बार तुम सोचकर बोलने को खड़े हुए थे।

मैं-क्या श्री माँ योगिराज अरविन्द के पाण्डिचेरी पहुँचने के पूर्व वहाँ थीं?

श्री गुरुजी - नहीं, वे बाद में वहाँ गयीं। जब प्रथम महायुद्ध प्रारंभ हुआ, तब वे कुछ समय के लिये वापस फ्रान्स चली गयीं थीं। फिर कुछ दिनों बाद वे भारत वापस आयीं। तबसे अबतक वे वहीं पर हैं।

मैं - क्या श्री माँ की सिद्धि प्राप्त हो गयी है ?

श्री गुरुजी - हाँ, यदि महर्षि अरविन्द पर विश्वास है तो उन्हें सिद्धि अवश्य प्राप्त है। महर्षि ने तो उनके बारे में बड़ी भावना प्रकट की है। अब श्री माँ की आयु ६६ वर्ष की है। शरीर अत्यंत कृश हो गया है, किन्तु मुखमंडल पर अपूर्व तेज है। देख कर मन को बड़ी प्रसन्नता होती है। आश्रम की प्रत्येक गतिविधि पर उनका नियंत्रण है।

मैं - आपकी तो उनसे भेंट हुई थी?

श्री गुरुजी - हाँ, मैं उनसे मिलने गया था।

मैं - क्या बातचीत हुई?

श्री गुरुजी - प्रकट बातचीत कुछ नहीं हुई। मुझे ऐसा लगा कि बातचीत न करना ही अधिक श्रेयस्कर होगा। हम दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे। काफी देर तक देखते रहे।

मैं - आपको ऐसा क्यों लगा कि न बोलना ही कल्याणकारी है?

श्री गुरुजी - अंदर से ऐसा विचार अपने आप आया कि न बोलना ही अधिक ठीक रहेगा।

मैं - अधिक ठीक रहेगा इसका क्या अर्थ है?

श्री गुरुजी - अरे भाई, जब प्रत्यक्ष बातचीत होती है, तब अनेक व्यावहारिक बातें बीच में आ जाती हैं और ज्यादा बात नहीं हो पाती। वैसे हम दोनों ने काफी बातचीत कर ली।

मैं - ऐसा कहते हैं कि चलते समय उन्होंने आपको गुलाब का एक फूल दिया था?

श्री गुरुजी - हाँ, दिया था। एक लाल गुलाब का फूल था। वहाँ रखे फूलों में वह अकेला ही वैसा फूल था।

मैं - क्या इसमें भी कोई संकेत है ?

श्री गुरुजी - होता है, ऐसा कहते हैं, पर मुझे नहीं मालूम।

### ३५. दीपक कई, पर प्रकाश एक

नागपुर जेल से अन्य संघ अधिकारियों के छूट जाने के बाद हम दो रह गये। श्री गुरुजी और मैं। अब संध्यावंदन में श्री गुरुजी अधिक समय बिताया करते थे। वे श्री गीता का पाठ रोज करते थे। अधिकतर एकान्त में ही रहना चाहते थे। थोड़ी बहुत मेरी चिन्ता भी उनको रहती थी।

कुछ ग्रन्थ बाहर से मंगवा लिये गये। एक दिन श्री गुरुजी बोले - 'चलो, हम लोग ज्ञानेश्वरी पढ़ें।'

वे पढ़ते थे और मैं सुनता था। श्री गीता जैसे गूढ़ ग्रन्थ की बातें मेरी समझ में भला क्या आ सकती थीं? परन्तु इतनी सावधानी से न कभी मैंने पढ़ा था और न कभी सुना ही था। मुझे याद नहीं बात कैसे चल पड़ी, परन्तु कुछ दिन के बाद ऐसा प्रसंग आया कि मुझे कहना पड़ा। मैंने श्री गुरुजी से कहा - मैंने ऐसा सुना है कि भगवान श्रीकृष्ण ने पार्थ अर्जुन को अपना आलिंगन प्रदान किया और अपने जैसे बना लिया, वह क्या बात है?

श्री गुरुजी ने ज्ञानेश्वरी का इस प्रसंग से सम्बद्ध पाठ, जो उन्हें कण्ठस्थ था, तुरन्त सुना दिया -

हृदया हृदय एक झाले। ये हृदयीचे ते हृदयी घातले।।

द्वैत न मोड़ता केले। आपणा ऐसे पार्था ।।

(द्वैत न समाप्त करते हुए भी पार्थ को अपने जैसा बना लिया। पार्थ को यह प्राप्त हुआ आलिंगन से)

इस पाठ को अधिक स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने कहा - एक दीपक से दूसरा दीपक प्रज्वलित करने के बाद फिर दो दीपक जलते हैं। दोनों का अस्तित्व अलग अलग है, परन्तु उनके प्रकाश में भेद नहीं किया जा सकता। कार्य वही होता है, भले ही व्यक्तित्व भिन्न भिन्न हो।

श्री गुरुजी के मुख से इस पाठ की व्याख्या मैं सुन रहा था और मन-ही-मन सोच रहा था, पूज्य श्री डॉक्टर साहब और पूज्य श्री गुरुजी के आपसी संबंध के बारे में आज भी सोचता हूँ कि ऐसा ही बड़ों के बारे में होता होगा।

- राजाभाऊ पातुरकर

### ३६. आत्मीय का अन्न परान्न कैसे ?

श्री गुरुजी एक स्थान पर किसी प्रतिष्ठित सज्जन से मिलने गये। उनके साथ स्थानीय कार्यकर्ता भी थे। बातचीत जब समाप्त होनवाली थी, तब प्रमुख कार्यकर्ता ने उन सज्जन से कहा - कल श्री गुरुजी मेरे यहाँ भोजन करने के लिये पधारेंगे, आप भी मेरे यहाँ आवें और उनके साथ भोजन ग्रहण करें, यह आपसे मेरी प्रार्थना है।

तब वे सज्जन बोले - आपके इस निमंत्रण को मैं एक शुभ अवसर मानता हूँ, परन्तु यह मेरे भाग्य में नहीं है। मैं भोजन नहीं कर पाऊँगा। परान्न ग्रहण न करने का मेरा नियम है।

तब श्री गुरुजी ने तत्काल कहा - परान्न ग्रहण न करने का मेरा भी नियम है। मैं इस नियम का तत्परता से पालन करता हूँ।

सब लोग अचम्भित होकर देखने लगे। उस सज्जन ने भी आश्चर्य स्वर में पूछा - यह कैसे हो सकता है? आप तो कल इनके यहाँ भोजन करने जा रहे हैं।

श्री गुरुजीने कहा - उनके यहाँ का अन्न परान्न कैसे हो सकता है। क्या ये पराये हैं? नहीं, ये अपने हैं। स्वकीय हैं। ये पूर्णतया आत्मीय हैं।

- प्र. ग. सहस्त्रबुद्धे

### ३७. मन्दिर प्रवेश के अधिकारी कौन ?

जनवरी १९६४ में श्री गुरुजी कालिकट आए थे। वहाँ स्वामी श्री कृष्णानंदजी से उनकी भेंट हुई और अनेक विषयों पर बातचीत होती रही। उसी में मन्दिरों में अहिन्दुओं के प्रवेश का भी प्रश्न आया। श्री स्वामीजी सोच रहे थे कि ईसाई और मुसलमानों को भी मन्दिर में प्रवेश क्यों न करने दिया जाये, जब कि मस्जिदों और गिरिजाघरों में हिन्दुओं को खुला प्रवेश है। स्वामी जी का मत यह था कि मन्दिर प्रवेश के संदर्भ में मन्दिरों की शुचिता और स्वच्छता बनाये रखने की दृष्टि से प्रवेशार्थियों के लिये स्वच्छता, शुद्धता, धुले-कपड़े आदि कुछ नियम लागू किये जा सकते हैं। उन्होंने इस विषय में श्री गुरुजी की राय जाननी चाही।

श्री गुरुजी ने कहा - सभी लोगों को मन्दिर में प्रवेश की अनुमति देना कोई कठिन बात नहीं है। परन्तु यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि मन्दिर भगवान का स्थान है और प्रवेशार्थियों की भी यह मान्यता होनी चाहिये। जहाँ तक हिन्दू का प्रश्न है, वह मस्जिदों और गिरिजाघरों के प्रति भी आदरभाव रखता है। वह यह मानता है कि ये स्थान भी ईश्वर के स्थान हैं। जब वह मस्जिद या गिरिजाघर में जाता है, तो वह अपनी आँखें बन्द करके अपने इष्टदेवता की प्रार्थना यथोचित श्रद्धा के साथ कर सकता है और सम्भवतः इसीलिये मुसलमानों और ईसाइयों के मस्जिदों और गिरिजाघरों में हिन्दुओं के प्रवेश पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु हम दूसरी प्रकार से इसका विचार करें। क्या मुसलमान और ईसाई यह भावना रखते हैं कि मन्दिर भी भगवान का स्थान है और वहाँ श्रद्धा के साथ जाना चाहिये? मन्दिरों के प्रति उनका यह दृष्टिकोण नहीं है। सम्पूर्ण देश में जो मन्दिर गिराये गये और मूर्तियाँ अपवित्र की गईं, वे मुसलमानों और ईसाइयों के दृष्टिकोण के पर्याप्त प्रमाण हैं। उनकी यह भावना है कि मन्दिर ऐसे स्थान हैं जो भ्रष्ट करने योग्य ही हैं। अतः क्या हमें इस बात का विचार नहीं करना चाहिये कि बिध्वंसकारियों को भगवान के मन्दिर में मुक्त प्रवेश दिया जाये अथवा नहीं?

- डा. काकासाहेब कुलकर्णी

### ३८. दो प्रसंग - दो विभिन्न अभिव्यक्तियाँ

संघ पर से प्रतिबंध हटने के बाद श्री गुरुजी का प्रवास पूर्ववत् शुरू हुआ। जिस शहर में वे जाते और सभाओं में भाषण करते तो लोगों की स्वाभाविक अपेक्षा रहती थी कि वे सरकार द्वारा उन पर और संघ पर जो अन्याय हुआ उस संबंध में सरकार की तीव्र आलोचना करेंगे। किन्तु ऐसा कुछ सुनने को नहीं मिलता था। अन्य दल का कोई नेता होता तो इतनी बड़ी संख्या में उपस्थित लोगों का समुदाय देखकर वह फूला नहीं समाता और अपने अन्दर दबायी हुई बदले की आग उगलने का ऐसा सुनहरा अवसर हाथ से गवाँना कभी भी पसंद नहीं करता। परन्तु श्री गुरुजी की बात ही कुछ अलग थी। वे शान्त, प्रसन्न और गंभीर थे। रा.स्व.संघ का ध्येय, उसका कार्य तथा उसका लक्ष्य इन्हीं विषयों पर नित्य के अनुसार वे बोलते थे। प्रतिबंध काल में सरकार द्वारा किये गये अन्यायों के विषय में वे इतना ही बोले - जब अपने ही दाँतों तले अपनी जीभ आ जाती है और वेदना होती है तो हम मुक्का मारके अपने दाँत तो गिराते नहीं। बस, अन्याय करनेवाली अपनी सरकार के विषय में हम ऐसा ही सोचें।

यह वाक्य सुनते ही लोग अर्चभित हो जाते थे। कैसे महापुरुष हैं? कैसी दृष्टि है, लोगों के हृदय रोमांचित हो उठते। राष्ट्रीय दृष्टि का एक आदर्श वस्तुपाठ लोगों को मिल जाता था।

एक अलग प्रसंग। उपरिनिर्दिष्ट प्रसंग से सर्वथा भिन्न। 9 फरवरी 1947 की रात्रि में श्री गुरुजी को बंदी बनाकर कारागार ले जाया गया। कारागार अधिकारी इस बंदी की राह देखते हुये कारागार के अपने कक्ष में टेबल पर पाँव पसारकर बैठा था। श्री गुरुजी को उसके सामने लाकर जब खड़ा किया गया तब वह उन्मत्त अधिकारी बोला -

‘ओ हो, तो आप हैं गोलवलकर ? मुझे तो लगा कि संघ जैसा फासिस्ट संगठन का नेता कोई तगड़ा, अंडसंड, विकराल चेहरेवाला आदमी होगा?’

श्री गुरुजी तपाक से बोले - जिन्होंने संघ का दायित्व मुझ पर सौंपा उनकी यदि वैसी कल्पना होती तो उन्होंने एकाध भैंसा पर या आप जैसों पर भी संघ का काम सौंप दिया होता।

उत्तर सुनते ही अधिकारी महाशय हड़बड़ाकर कुर्सीपर ठीक ढंग से बैठे और उन्होंने श्री गुरुजी को बैठने के लिये कुर्सी दी।

पहला प्रसंग उनके राष्ट्र-दृष्टि का परिचायक है तो दूसरा प्रसंग उन्मत्त अधिकारी को सबक सिखाने वाला है।

- एक स्वयंसेवक

(श्री गुरुजी समग्रदर्शन खंड २ : प्रतिबंध पर्व)

### ३६. नेहरुजी की सभा के बहिष्कार से बेचैनी

सन १९५३ में मैं विजयवाड़ा के संघ शिक्षा शिविर का सर्वाधिकारी था। उस समय मुझे संघ का परिचय सामान्य ही था। श्री गुरुजी के व्यक्तित्व की महानता का तो मुझे थोड़ा भी परिचय नहीं था। संघ शिक्षा शिविर में श्री गुरुजी आये उसी समय का यह प्रसंग है।

स्वतंत्र नागालैंड की माँग करनेवाले फिजो समर्थक नागाओं को एक सभा में पं. नेहरु जी ने फटकारा। परिणाम यह हुआ कि सारे श्रोता सभा छोड़कर चले गये। इस घटना पर न समाचार पत्रों ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त की और न जनसाधारण की विचारधारा में कोई बेचैनी दिखलायी दी। परन्तु श्री गुरुजी बरामदे में इस छोर से उस छोर तक चक्कर लगा रहे थे।

मैं उनके पास गया और कहा - गुरुजी आधी रात हो गयी है और आप अभी तक सोये नहीं?

श्री गुरुजी ने कहा - आज नागालैंड का जो समाचार आया है उसने बड़ी बेचैनी उत्पन्न कर दी है। यह तो भारत के प्रधानमंत्री का नहीं, अपितु सारे राष्ट्र का अपमान है। कितनी अभद्र बात है कि लोग उन्हें अकेले छोड़कर, उनका बहिष्कार करके सभा से चले जायें? कोई इसे कैसे सहन कर सकता है।

उस समय मैं इसका महत्त्व नहीं समझ सका। किन्तु आज जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि श्री गुरुजी का व्यक्तित्व राष्ट्र के साथ कितना एकाकार हो गया था। श्री गुरुजी क्षुद्र स्वार्थभाव से तथा व्यक्तिगत रुचि-अरुचि से सर्वथा परे थे। राष्ट्रीय प्रश्नों पर पं. नेहरुजी के विचारों से वे अनेकों बार असहमत थे। परन्तु मतभेद के बावजूद भी नेहरुजी के बहिष्कार की घटना से श्री गुरुजी बेहद बेचैन थे।

ऐसे ही बेचैन श्री गुरुजी अन्य प्रसंग पर हुये थे जब लंदन में भारतवासियों ने नेहरुजी को काले झंडे दिखाकर विरोध किया था।

श्री गुरुजी ने कहा - “परस्पर मतभेद हो सकता है पर विदेशों में अपने ही प्रधानमंत्री के सामने इस प्रकार के प्रदर्शन करना क्या उचित है?”

इस प्रकार का अपमान समूचे भारत राष्ट्र का अपमान है। पं. नेहरु वहाँ काँग्रेस के प्रमुख के नाते नहीं गये थे। भारत के प्रधानमंत्री के नाते गये थे। मैं तो किसी राजनैतिक दल का सदस्य नहीं हूँ और भविष्य में बनूँगा भी नहीं, राजनीति मेरी प्रकृति नहीं है। फिर भी वह समाचार पढ़कर मुझे अत्यन्त क्षोभ हुआ क्योंकि वह राष्ट्र का अपमान है।

एक बार इंग्लैंड के भूतपूर्व प्रधानमंत्री चर्चिल अमेरिका गये थे। वह अपने सरकार की कड़ी आलोचना करेंगे यह सोचकर पत्रकारों ने उनसे पूछा, आपकी सरकार का शासन कैसे चल रहा है?

चर्चिल ने उत्तर दिया - मैं तुम्हारे प्रश्न का हेतु समझता हूँ। परन्तु यह मत भूलिये कि इंग्लैंड में मैं विरोधी दल का नेता हूँ परन्तु विदेश में मैं अपने सरकार का समर्थक हूँ। In England I am the Leader of the Opposition, but abroad I am supportor of his majesty's Government, इस प्रकार की दृष्टि ही राष्ट्रीय दृष्टि है।”

- लिंगय्या चौधरी

### ४०. परमात्मा की योजना का अद्वितीय प्रतिपादन

२४ नवम्बर १९६३ को श्री गुरुजी का कार्यक्रम बेलगाँव में था। वहाँ उनसे मिलने के लिये त्रिनिदाद से एक संसद सदस्य श्री शम्भुनाथ कपिलदेव आये थे। त्रिनिदाद में हिंदु संस्कारों की कोई व्यवस्था नहीं थी। नामकरण, विवाह आदि सभी संस्कार ईसाईयों की पद्धति से गिरिजाघरों में होते थे। हिन्दू संस्कारों के लिये भारत से पण्डित-पुरोहित की व्यवस्था हो, इस विषय में भारत सरकार के अधिकारियों से बातचीत करने वे दिल्ली आये थे, किन्तु उन्हें उत्तर मिला - यह कैसे संभव है? भारत सरकार की नीति तो सेक्युलर है।

कपिलदेव निराश हो गये थे। परन्तु दिल्ली में किसी महानुभाव ने उन्हें श्री गुरुजी से मिलने की सलाह दी।

कपिलदेव बेलगाँव आये। वे जो छोटा-सा काम लेकर आये थे वह तो पूरा हो ही गया, इतना ही नहीं तो दुनियाभर में बसे हुए हिन्दुओं को प्रेरणा देने, मार्गदर्शन करने और सहायता देने के लिये हिन्दुओं की विश्वव्यापी संस्था (विश्वहिन्दू परिषद) स्थापित करने का निर्णय भी इसी वार्तालाप की उपलब्धि है।

सायंकाल श्री गुरुजी का सार्वजनिक कार्यक्रम था। कपिलदेव जी इस कार्यक्रम के लिये संघस्थान पर पहुँचे। वहाँ व्यासपीठ के आसपास की व्यवस्था देखकर श्री गुरुजी की सुरक्षा व्यवस्था के विषय में उनका मन आशंकित हो उठा। व्यासपीठ के निकट ही एक कार्यकर्ता से उन्होंने पूछा - श्री गुरुजी की सुरक्षा के लिये समुचित व्यवस्था की गई है न?

व्यासपीठ के आसपास खड़े दण्डधारी स्वयंसेवकों की ओर इशारा करते हुए कार्यकर्ता ने कहा - हाँ, अच्छी व्यवस्था है।

इस उत्तर से कपिलदेवजी का समाधान नहीं हुआ। बेचैनी पूर्वक उन्होंने पुनः पूछा - तुम्हारे ये दण्ड बन्दूकों की गोलियाँ रोक सकेंगे क्या? कल ही जो दुर्घटना हुई है, वह क्या तुम्हें पता नहीं है?

दो दिनों पूर्व ही अमेरिका के लोकप्रिय राष्ट्रपति श्री कनेडी की जो हत्या की गयी थी, उसकी ओर कपिलदेवजी संकेत कर रहे थे।

कार्यक्रम समाप्त होने के बाद श्री कपिलदेवजी पुनः श्री गुरुजी से मिलने उनके निवासस्थान पर पहुँचे।

उन्होंने श्री गुरुजी से पूछा - आपने अपनी सुरक्षा की क्या व्यवस्था की है? दुनिया में हत्यारों की संख्या लगातार बढ़ रही है। इन सबसे आपके बचाव की कुछ न कुछ व्यवस्था रहे।

सदा की तरह मुक्त हास्य बिखेरते हुए श्री गुरुजी ने कहा - मैं कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं हूँ।

कपिलदेवजी ने कहा - प्रश्न यह नहीं है कि आप अपनी दृष्टि में छोटे हैं या बड़े। हत्यारों की दृष्टि में आपका महान होना पर्याप्त है।

श्री गुरुजी ने कहा - परन्तु इस जगत् में सब कुछ भगवान् की इच्छा के अनुसार होता है। उसकी इच्छा न हो तो कोई किसी को मार नहीं सकता। इसके विपरीत, यदि भगवान् को लगता है कि बस, पर्याप्त हो गया इसका जीवन, तो फिर ऐसे व्यक्ति को कोई नहीं बचा सकता।.....

बीच में ही कपिलदेवजी बोले - कल ही कनेडी .....

श्री गुरुजी ने उसी साँस में उत्तर दिया - मुझे भी तो वही कहना है। कनेडी की सुरक्षा व्यवस्था क्या कम थी? गोली विरोधक कार में प्रवास, अगलबगल में और चारों ओर सुरक्षा सैनिक, गुप्तचर, गवर्नर्स, पास में पत्नी। इतना सब होकर उन्हें कोई बचा नहीं सका। इसका अर्थ यही है कि कनेडी का जीवनकार्य पूर्ण हो चुका था। ईश्वर को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब और समय तक भूतल पर रहना कनेडी के लिये हितकारक नहीं है। इसीलिये उनका जीवन समाप्त हो गया।

श्री कपिलदेवजी ने कहा - परन्तु श्री गुरुजी। यह कैसे माना जाय कि कनेडी की हत्या से कनेडी का ही लाभ हुआ?

श्री गुरुजी ने उन्हें समझाने का प्रयास किया - ऐसी बात नहीं है। कनेडी के जीवन की ओर देखें। उन पर ईश्वर का बहुत अधिक प्रेम था। ईश्वर ने उन पर दो कार्य सौंपे थे। एक तो संसार में शक्ति संतुलन बनाये रखने के लिये अर्थात् रूस की आक्रामक प्रवृत्ति को नियंत्रित करने के लिये और दूसरा अमेरिका के श्वेत-अश्वेत नागरिकों में समरसता और सामंजस्य निर्माण करने के लिये। कनेडी का यही जीवनकार्य था। क्यूबा के मामले में धैर्य के साथ उन्होंने रूस का सामर्थ्य समाप्त कर दिया। यही उनके जीवन कार्य की अत्युत्तम सिद्धि थी। अमेरिका में श्वेत-अश्वेतों में समरसता लाने के लिये दृढ़ता से कार्य किया। इसके बाद वे अधिक दिन जीवित रहते तो अमेरिका में राजनैतिक संघर्ष होता उसमें संभवतः कनेडी की बदनामी भी होती। भगवान की यह इच्छा नहीं थी कि संसार में एक उत्तम राष्ट्रपति के रूप में कीर्ति प्राप्त कनेडी की बदनामी हो। इसीलिये भगवान ने उन्हें हुतात्मा की मृत्यु देकर उनकी कीर्ति की रक्षा की। अगले दो तीन राष्ट्रपति के कारण अमेरिका की बहुत बदनामी होने की सम्भावना है। दुनिया में अमेरिका का प्रभाव भी कम होने वाला है।



श्री कपिलदेवजी शान्त चित्त से सब कुछ सुन रहे थे। श्री गुरुजी के अकाट्य तर्कों ने उनके मन को जीत लिया, फिर भी बुद्धि भरोसा नहीं कर पा रही थी। इस तरह विश्वास अविश्वास का अन्तर्द्वन्द्व मन में लिये हुए कपिलदेवजी बैठक के बाहर आये। बाहर आकर उन्होंने कहा - आश्चर्य है। इस तरह का अद्वितीय प्रतिपादन मैंने इसके पूर्व कभी नहीं सुना था।

दूसरे दिन कपिलदेवजी बेलगाँव से रवाना होने के पूर्व श्री गुरुजी से मिले। उन्होंने गुरुजी को साष्टांग प्राणिपात किया तथा उनके दो छायाचित्रों पर अंग्रेजी में उनके हस्ताक्षर लिये।

- एन्. कृष्णप्पा

### ४१. राष्ट्र के साथ एकाकार

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर से प्रतिबंध हटने के बाद श्री गुरुजी काशी आये थे। काशी के नगरपालिका ने उनका अभिनंदन करने का निश्चय किया। नगराध्यक्ष एक मुस्लिम सज्जन थे। नगरपालिका में मुस्लिम प्रतिनिधि भी चुनकर आये थे। नगराध्यक्ष ने अपने स्वागत भाषण में कहा - हम पूज्य श्री गुरुजी का सम्मान कर रहे हैं, लेकिन हमारे मन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्बन्ध में अनेक संदेह हैं। कुछ भय भी है। वैसे भय उन्हें देखते ही खत्म हो गया। हम समझते थे कि भयंकर विकराल रूप वाला कोई व्यक्ति आयेगा। मगर वे तो हँसते-मुस्कराते हुए आये। हम यह पूछना चाहते हैं कि श्री गुरुजी के भारत में मुसलमानों का क्या स्थान होगा?

श्री गुरुजी ने कहा - मुसलमानों का स्थान क्या होगा, यह तय करनेवाला मैं कौन हूँ? मुसलमान ही तय करें कि वे क्या स्थान चाहते हैं। किसी की उपासना पद्धति से हमारा कोई मतभेद नहीं। कोई अगर ऐसा समझता है कि भगवान् को अल्लाह के नाम से पुकारकर वह परम तत्त्व की प्राप्ति कर सकता है तो वह अल्लाह कहे। लेकिन उपासना पद्धति को छोड़कर बाकी सारी बातों के लिये उनको राष्ट्र के साथ अपने को एकाकार करना चाहिये।

श्री गुरुजी ने फिर एक बात और कही। उन्होंने कहा - आपको शायद मेरी बात पसन्द नहीं आयेगी। यहाँ अंगरेज राज करते थे। हमने उनको उखाड़कर फेंक दिया। भारत में इस्लाम भी आया। कुछ प्रचार के मार्ग से आया, कुछ तलवार के जोर पर आया। कुछ लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया कि उन्हें उपासना पद्धति पसन्द थी, मगर कुछ लोगों ने स्वीकार किया इसलिए कि स्वीकार करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। हमने राजनैतिक गुलामी उखाड़कर फेंक दी है, अब कोई अगर धार्मिक गुलामी भी छोड़ना चाहता है तो हम उसका स्वागत करेंगे।

और बाद में नगराध्यक्ष ने जब धन्यवाद दिया तो कहा - श्री गुरुजी ने जो विचार व्यक्त किये, उससे हमारा कोई मतभेद नहीं है। फिर भी न जाने क्यों श्री गुरुजी को लोग मुस्लिम विरोधी कहते हैं। हम जानते हैं कि उनके मन में किसी वर्ग के प्रति विद्वेष नहीं है।

- अटलबिहारी वाजपेयी

### ४२. भारतीय संस्कृति के साकार रूप

मैं एक निष्ठावान गांधीवादी हूँ। सर्वोदय एवं इसी प्रकार के आंदोलनों से मैं आज भी सम्बद्ध हूँ। मुझे गांधीजी के बहुत निकट रहने का अवसर मिला है, और उनके व्यक्तित्व का मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा है। इस पृष्ठ भूमि में यह स्वाभाविक है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनुशासन, चारित्र्य और सादगी का तो मैं प्रशंसक था किन्तु यह मानकर चल रहा था कि संघ के विचार कट्टर हिन्दुवादी हैं। यही कारण था कि मैं संघ के कट्टर हिन्दुवादी विचारों का विरोध करता था।

जब गांधीजी की हत्या हुई तब मैं कोट्टयम में था। तत्काल दिल्ली जाने की मेरी इच्छा हुई, अतः मुझे अपना पद छोड़ना पड़ा। (वे केरल के ख्यातनाम दैनिक समाचार पत्र 'मलयालम् मनोरमा' के सम्पादक थे) ३० जनवरी को हत्या हुई थी और मैं १६ फरवरी को दिल्ली पहुँचा। वहाँ मैं पत्रकार और गांधीभक्त के रूप में विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेने लगा। उस समय सम्पूर्ण वातावरण संघ विरोधी भावनाओं से व्याप्त होने के कारण बड़ा तनावपूर्ण बना हुआ था। ऐसा होकर भी मेरे हृदय में किसी कोने में यह भावना घर किये हुए थी कि इस घृणित कृत्य में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का हाथ नहीं है। अतः मैंने निश्चय किया कि सिवनी या बैतूल कारागार में जहाँ कहीं भी श्री गुरुजी को रखा हो वहाँ जाकर श्री गुरुजी से मुझे प्रत्यक्ष मिलना चाहिये। हत्याकाण्ड के मामले को लेकर संघ के विषय में

अथवा श्री गुरुजी के सम्बन्धों के विषय में श्री गुरुजी से सीधी बात करने का मेरा निश्चय था। मैं सिवनी गया किन्तु वहाँ के कारागार के अधिकारियों ने मुझे श्री गुरुजी से मिलने की अनुमति नहीं दी। उन अधिकारियों ने यह वचन अवश्य दिया कि मेरे आने की सूचना श्री गुरुजी तक अवश्य पहुँचा दी जायेगी।

इसके बाद मैं केरल लौट आया। पुनः 'मलयालम् मनोरमा' के सम्पादन के कार्य में संलग्न हो गया। समय के व्यतीत होने के साथ साथ वे सब बातें भी विस्मृति में विलीन हो गयीं।

सन १९६५ की बात है। श्री गुरुजी पालघाट में अपनी आयुर्वेदिक चिकित्सा करा रहे थे। जो चिकित्सक श्री गुरुजी की चिकित्सा कर रहे थे वे मेरे निकटवर्ती रिश्तेदार थे। उन्हीं से मुझे ज्ञात हुआ कि श्री गुरुजी पालघाट में हैं। स्वाभाविक ही मैं उनसे मिलने गया। ज्योंही श्री गुरुजी से मेरा परिचय कराया गया, त्यों ही उन्होंने मुझसे पूछा - क्या आप वही पिशाद्रि हैं, जो मुझसे मिलने के लिये सिवनी कारागार आये थे, किन्तु मिलने की आज्ञा प्राप्त न हो सकने के कारण निराश होकर लौटना पड़ा था?

मैंने बतलाया कि मैं वही हूँ। पर श्री गुरुजी की इस चमत्कारिणी प्रखर स्मरणशक्ति को देखकर मैं दंग रह गया। मैं तो यही समझता हूँ कि यह श्री गुरुजी की महानता का परिचायक है।

इस भेंट में राष्ट्रीय महत्त्व के अनेक विषयों पर बातचीत हुई। मेरी धारणा यह थी कि संघ की विचारधारा में मुस्लिम विरोधी दृष्टिकोण सन्निहित है। मैंने अपनी संघ विषयक धारणाएँ तथा अनेक शंकाएँ उनके सामने रखीं। श्री गुरुजी ने मुझसे प्रश्न किया - आपको ऐसा किसने बतलाया? यह सब झूठ है। वास्तविक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की हिन्दू संगठन परक विचारधारा भावात्मक है। संघ मुस्लिमों का अथवा अन्य किसी का विरोधी कदापि नहीं है।

जब वे मुसलमानों से सम्बन्धित अपने दृष्टिकोण को समझाने लगे तो मैंने ऐसा अनुभव किया कि वे मुसलमानों को केवल राष्ट्रीय जीवनप्रवाह में लाना चाहते हैं और इस राष्ट्रीय जीवनप्रवाह को वे हिन्दू जीवनप्रवाह कहना श्रेयस्कर मानते हैं। इस बातचीत में मैंने अपने आपको उनसे पूर्णतः सहमत पाया। इसके बाद श्री गुरुजी ने संघविचार से सम्बन्धित विपुल साहित्य मेरे पास भिजवाने की व्यवस्था की। इस सामग्री में श्री गुरुजी के प्रकाशित भाषण, प्रश्नोत्तर आदि थे। इस साहित्य को पढ़कर मेरे सभी सन्देह दूर हो गये।

इसके बाद श्री गुरुजी जब कभी कोट्टयम आते तो प्रांत संघचालक श्री ए.गोविन्द मेनन अथवा जिला संघचालक श्री नारायण भट्ट के यहाँ मेरी उनसे भेंट होती और लम्बे समय तक विभिन्न विषयों पर चर्चा होती। क्रमशः हम दोनों के बीच घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गया। मैं ऐसा अनुभव करने लगा कि मैं एक ऐसे महान व्यक्ति के सम्पर्क में आया हूँ जो अनेक वर्षों तक मेरे मित्र रह चुके हैं।

मेरी यह मान्यता है कि श्री गुरुजी महान हैं और उनका जीवन ध्येय यथार्थ में भारत का पुनरुज्जीवन है। गांधीजी उनसे कुछ भिन्न थे क्योंकि उनका मार्ग भिन्न था। किन्तु राष्ट्र के पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में दोनों के मूलभूत सिद्धान्त तत्त्वतः समान थे। दोनों में अद्भुत समानता थी। दोनों ही कुशल संगठनकर्ता थे। और अपने अनुयायियों तथा सहयोगी कार्यकर्ताओं की चिन्ता किया करते थे। यह कहना नितांत सत्य है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रत्येक कार्यकर्ता के पारिवारिक समस्याओं की सूक्ष्मातिसूक्ष्म जानकारी श्री गुरुजी रखा करते थे। उनका तत्त्वज्ञान संकुचित अथवा साम्प्रदायिक कदापि नहीं था। वे चाहते थे कि प्रत्येक भारतीय, चाहे वह किसी जाति अथवा पंथ अथवा प्रान्त का हो, बिना सौदेबाजी किये स्वयं को राष्ट्रीय जीवन प्रवाह का एक अंग समझे। वे एक महान ऋषि थे। वे धर्मान्ध नहीं थे, अपितु भारतीय संस्कृति के साकार स्वरूप थे।

- के.पी.के. पिशाद्रि, संपादक, 'मलयालम् मनोरमा'

### ४३. प्रभुदत्त ब्रह्मचारी महाराज के शब्दों में

१) एकबार मैं वृन्दावन में था तभी रा.स्व.संघ के उत्तर प्रदेश के उत्तरी जिलों के स्वयंसेवकों का शिविर वृन्दावन में लगा था। मैं भी शिविर में गया। (गुरुजी से) मैंने कहा - 'कल प्रसाद पाने आश्रम में आइयेगा।

मेरे यहाँ प्रसाद पाने में उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती, मैं देखता था। मेरे यहाँ जितने उल्लास से पेट भरके वे प्रसाद पाते थे, इतना प्रसाद वे कहीं भी नहीं पाते थे। बोले - 'कै आदमी आवें?'

मैंने कहा - जितने चाहें साथ ले आवें।

वे बोले - 'हम तो चार पाँच सौ हैं'

मैंने कहा - 'तो सभी आइये।'

दूसरे दिन बड़े ठाट के साथ गाजे-बाजे के साथ, बाजे बजाते हुए गणवेश के साथ पाँच सौ स्वयंसेवकों के साथ समुपस्थित हुए। और बड़े प्रेम से प्रसाद पाया। उस दिन हँसते ही रहे। बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान दिया।

२) उनमें मिथ्याभिमान का लेश मात्र भी नहीं था। हमारे ही यहाँ के साधक विद्यार्थी जब साधु संन्यासी का वेश बना लेते हैं या किसी महन्त अथवा जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं, तो एकान्त में तो साष्टांग प्रणाम करते हैं। किन्तु जब अपने शिष्य भक्तों में मिलते हैं, तो उन्हें प्रणाम करने में लज्जा का अनुभव होता है। ऐसा बर्ताव करते हैं, मानो हम उनसे परिचित ही नहीं। उनका इसमें कोई दोष नहीं। यह जैव धर्म है। मनुष्य में अपने अनुयायियों के सम्मुख अपने को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। किन्तु उनमें यह बात नहीं थी।

उस दिन मालवीयजी के निधन पर संघ की ओर से काशी टाउन हाल में शोकसभा थी। यहीं प्रयाग से हमें और उन्हें जाना था। मुझे उन्होंने उसका अध्यक्ष बनाया था। मुझसे यह कह गये कि मैं चलता हूँ प्रबंध करूँगा, आप आइयेगा।

बड़ी भारी सभा थी। पचासों सहस्र नरनारी एकत्र थे। सभा खचाखच भरी थी। मैं गया, उठकर मुझे माला पहनाई, सबके सम्मुख साष्टांग प्रणाम किया। उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता था। जब भी मिलते सबसे प्रथम दौड़कर पैरों में सिर टिका देते। ऐसे विनयशील निरभिमान जिनके सम्मुख हम कुछ भी नहीं थे, उनका भी इतना आदर करनेवाले व्यक्ति अब कहाँ मिलेंगे?

#### ४४. आप धन्य हैं

सम्भवतः १९५३-५४ की बात होगी। श्री गुरुजी के पूज्य माता-पिता श्री श्रृंगेरी क्षेत्र की यात्रा पर आये थे। वहाँ श्रृंगेरीपीठाधिपति शंकराचार्य स्वामीजी महाराज के दर्शन करने की उनके मन में बड़ी इच्छा थी। किन्तु एक बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हो गयी। पूज्य श्री स्वामीजी महाराज भगवच्चिन्तन तथा ध्यान-धारणा के लिये अन्तर्मुख रहते हुए अत्यधिक एकान्तिक जीवन तीनचार मास से व्यतीत कर रहे थे। इस प्रकार की जानकारी मिलने के बाद यह निश्चित हो गया कि उनके दर्शन नहीं मिल पायेंगे। फिर यह तय किया गया कि उनके दर्शन का सौभाग्य नहीं मिल सका तो कम से कम उनके निवास स्थान का दर्शन करके उसे प्रणाम कर लिया जाये। इसके लिये वे लोग 'नरसिंहवन' की ओर गये।

उनके साथ एक कार्यकर्ता भी था। उसने उस स्थान का दर्शन कराया। स्थान सम्बन्धी कई बातें बतलायीं तथा कहा - पिछले चार मास से स्वामीजी के निवास का द्वार नहीं खुला है। सौ. ताईजी और आदरणीय भाऊजी (श्री गुरुजी के माता-पिता) बन्द द्वार को ही प्रणिपात करके लौटने के लिये मन-ही-मन विचार कर ही रहे थे कि इसी बीच अचानक द्वार खुल गया और दोनों के सौभाग्य से स्वतः स्वामी श्री शंकराचार्य जी महाराज द्वार पर खड़े दिखलायी दिये।

स्वामी जी ने कहा - आप गोळवलकरजी के माता-पिता हैं न? आइये, अन्दर आइये।

अचानक द्वार खुल जाने पर सबके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। सब लोगों ने भक्तिभाव से साष्टांग प्रणिपात किया और भीतर गये। स्वामीजी महाराज ने ताईजी और भाऊजी से कहा - आपने देश को एक महापुरुष प्रदान किया है। आप धन्य हैं।

इस भाँति श्री चन्द्रमौलीश्वरजी का प्रसाद अकस्मात् प्राप्त हो जाने से सभी लोग प्रसन्न होकर वहाँ से लौटे।

- एन. कृष्णप्पा

#### ४५. निर्मल चेतना के धनी

एक बार नागपुर गया तो हेडगेवार भवन पहुँच गया। भवन देखकर और श्री गुरुजी का स्थान देखकर बहुत अच्छा मालूम हुआ कि कोई भी अतिरिक्त वस्तुएँ वहाँ नहीं थी। सब आवश्यक। आडम्बर का कहीं भी अस्तित्व नहीं। श्री गुरुजी स्वयं नितान्त सरल और सहज। मुझे पाकर जैसे मेरे सम्मान में ही सर्वथा व्यस्त हो गये। वह

स्नेहभाव मुझे सुखद और आश्चर्यकारी प्रतीत हुआ। गुरुता जैसी चीज भी प्रकट होती तो मैं उसे अन्यथा नहीं समझता। लेकिन उसकी कहीं सम्भावना नहीं थी। उद्यमी और तत्पर कार्यकर्ता की भाँति स्वयं सब कार्य में कार्यरत।

भवन में मैंने देखा कि वे हार्दिक आदर श्रद्धा की प्रेरणा हैं। इसी भावना से उनके साथी-सहयोगी काम करते हैं। उनमें पद की कृत्रिमता का मिश्रण नहीं है। काम पड़ता होगा, लेकिन किसी कृत्रिम व्यवधान को डालकर व्यवहार को बनावटी बनाने की वृत्ति उनमें नहीं देखी। ऐसा सुनता हूँ कि आजकल प्रशासकों को उसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है। इधर भाषा के शिष्टाचार पर तो बल है, लेकिन अंदर से जनता से दूरी रखी जाती है।

मैं चलने लगा तो श्री गुरुजी स्वयं बाहर तक आये और बोले -यह गाड़ी किसकी है? तत्काल खोज हुई मालिक महाशय की। वे आये तो उनसे श्री गुरुजी ने कहा - देखिये ये श्री जैनेन्द्रजी हैं। अमुक स्थान पर पहुँचा आईये।

मुझे अपने लिये किसी प्रकार के संभ्रम का भ्रम नहीं हो सकता था। मैं ठहरा श्री पूनमचन्द्रजी राँका के यहाँ, जो उस समय शायद स्थानीय काँग्रेस के अध्यक्ष थे। पर उस सबसे श्री गुरुजी के व्यवहार में कुछ भी अंतर नहीं आया।

विस्मय मुझे तब हुआ, जब स्वयं श्री गुरुजी राँकाजी के घर पर उपस्थित हुए। निर्मलचित्तता के कारण ही ऐसा हो सकता था।

-जैनेन्द्रजी (गांधीवादी हिंदी साहित्यकार)

## ४६. एक उल्लखनीय और सहजरोगी

सन १९७० की एक वर्षा-आँधी वाली रात को मेरे एक सहयोगी ने मुझे फोन किया और पूछा-क्या गुरुजी श्री गोळवलकरजी की डाक्टरी परीक्षा के लिये मैं समय दे सकता हूँ?

मैंने स्वीकृति प्रदान कर दी। अगले प्रातः मैं उन्हें देखने चला गया। मैंने गोळवलकरजी के बारे में बहुत पढ़ा सुना था। मुझे मालूम था कि उन्हें अपनी मान्यताओं के प्रति अटूट आस्था है। हिंदूराष्ट्र एवं हिन्दुत्व पर उनकी मान्यता दृढ़ और अचल है। और वे इस सम्बन्ध में बहुत ही कट्टरपंथी एवं संकुचित हैं। मैं इस अन्तिम विषय में कितना गलत था यह बाद में पता चला।

उनका निर्बल और कृश शरीर, उनके विषय में मेरी पूर्व जानकारी, पूर्व कल्पना तथा धारणा के बिल्कुल विपरीत था। पहले ही भेंट में मुझे पता चला कि मैं एक गम्भीर दृष्टिवाले, ज्ञानेच्छुक व्यक्ति के सामने हूँ। वह व्यक्ति तर्कशील है, विनम्र है, प्रबुद्ध है, दूसरे पक्ष के दृष्टिकोण को सुन सकता है और उन्हें समझ सकता है। प्रारम्भिक बातचीत में ही मैंने उनके व्यक्तित्व के विषय में बहुत कुछ जान लिया।

श्री गुरुजी ने प्रश्न किया - तो डाक्टर मेरे रोग के बारे में आपका क्या विचार है?

मैंने कहा - आपकी दशा से कैंसर की सम्भावना का संदेह हो रहा है। इसका ठीक पता लगाने और चिकित्सा हेतु शल्यक्रिया आवश्यक है।

मेरे इस निदान से वे जरा भी नहीं घबराये, जैसा कि आम तौर पर साधारण आदमियों के साथ होता है।

कुछ पल सोचकर बोले - यदि कैंसर ही हो तो मेरी राय में उसे यों ही रहने दो। ... क्या आपको आशा है कि आप उसे ठीक कर लेंगे?

उन्हें इस रोग का और मानव शरीर पर उसके कुप्रभावों का पूरा ज्ञान था। उनका अगला प्रश्न था- क्या यह अन्यत्र भी पहुँच गया है?

मैंने उनकी सारी स्थिति समझायी। उन्होंने वह समझ ली और वे चुप हो गये। लम्बी चुप्पी के बाद वे बोले - अब तो मुझे ऑपरेशन कराना ही होगा। यह उन्होंने बड़ी धीरता से कहा था।

श्री गुरुजी ३० जून, १९७० को अस्पताल में भर्ती हो गये और १ जुलाई, १९७० को उनका कैंसर का ऑपरेशन कर दिया गया। ऑपरेशन के अगले दिन वे उठ बैठे थे। चलने-फिरने भी लगे। अस्पताल में उनके तीन सप्ताह के निवास ने उनके मन और व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिये मुझे काफी लम्बा अवसर मिला। उनसे हुई

अनेक भेंट और वार्ता मेरे जैसे आदमी के लिये ज्ञानवर्धन का माध्यम सिद्ध हुई थी। उनके अन्तश्चरित्र को स्पष्ट करने वाली कुछ घटनाएँ ऐसी हैं। ...

अपने रोग की गम्भीरता एवं व्यापकता के विषय में पूर्ण जानकारी और जीवन की सम्भावना के बारे में सम्यक् जानकारी वे चाहते थे। मैंने सत्य को उनसे छिपाया नहीं था। सभी बातें साफ साफ बता दी थीं। मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा था- ओह! तब तो ठीक है। इतने दिन बहुत हैं और मेरे पास इतने दिनों के लिये काफी काम है।

ऑपरेशन के सात दिन बाद श्री गुरुजी बम्बई शहर के एक उपनगर की सभा में गये थे। उन्होंने वहाँ जाने की आज्ञा डॉक्टरों से ले ली थी। मैंने उनसे कहा था- मैं आपको जाने दूँगा, बशर्ते आप भाग न जायें।

अपने विनोदप्रियता का परिचय देते हुए बोले - क्या मैं आपको चोर उचक्का लगता हूँ?

जितने दिन वे अस्पताल में रहे, वहाँ विनोद और खुशी का वातावरण था। उनके व्यक्तित्व की पूर्ण मीमांसा करने के लिये कोई भी विशेषण उचित और उपयुक्त नहीं लगता। वे एक राजनीतिक दार्शनिक और गहन अध्ययनकर्ता थे। मानव तथा पदार्थ घटनाक्रम का असीम ज्ञान उन्हें था। उनकी विचारधारा में विज्ञान, धर्म और संस्कृति का समान समावेश था। उन्होंने एक दिन कहा था- मानव के प्रत्येक विकास के लिये विज्ञान परमावश्यक है। यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था। आश्चर्य इसलिये कि यह वाक्य एक अगाध धार्मिक आस्थावाले व्यक्ति ने कहा था। वे उन लोगों में से नहीं थे जो अपना दर्शन और अपनी आस्था दूसरों पर थोपते हैं, किन्तु वे अपनी मान्यताओं और कथनी के प्रति पूर्ण निष्ठावान थे। एक बार उन्होंने यह भी कहा था - जो मेरी दृष्टि में सत्य और न्यायपूर्ण है मैं उसके लिये हमेशा प्रत्यनशील रहा हूँ और रहूँगा। ... यही एक वाक्य उनकी आन्तरिक भावना और अप्रतिहत साहस का संक्षिप्त परिचय देता है और यही वाक्य इस प्रश्न का भी उत्तर था कि उनके इतने अधिक अनुयायी क्यों हैं?

अस्पताल से जाने के पूर्व उन्होंने कहा था - मनुष्य को मृत्यु की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। सभी को एक न एक दिन मरना ही होगा। जीवन की अवधि का नहीं, उसकी उपयोगिता का महत्त्व होता है। मेरे सामने लक्ष्य है और मैं चाहता हूँ कि अन्तिम श्वास तक मैं उसके लिये प्रयत्नशील रह सकूँ।

आपरेशन के बाद दो वर्ष वे बहुत ही स्वस्थ और कर्मण्य रहे। मेरे अंदाज के विपरीत उनका जीवन बहुत आगे तक चलता रहा। वे एक उल्लेखनीय और बहुत ही सहज रोगी थे। .. यद्यपि वे कार्यशील थे, परन्तु मृत्यु की छाया उनके निकट आती जा रही थी। अप्रैल १९७२ में लिये गये एक्स-रे से पता चला की रोग अत्यन्त गम्भीर हो गया है। उसके बाद के घटनाक्रम को लिखने के लिये अब शेष क्या बचा है?

इस आलेख का यह उद्देश्य नहीं है कि श्री गुरुजी को मृत्युपरान्त उस रूप में दर्शाया जाये, जो वे जीवन में नहीं थे। .... वह व्यक्ति जिसने एक भयंकर रोग का शारीरिक और मानसिक आघात का धीरज और साहस के साथ सामना किया, वह व्यक्ति जिसकी अपने देश सम्बन्धी मान्यताएँ और आस्थाएँ निष्ठापूर्ण थीं, वह व्यक्ति जो कभी अपनी आस्थाओं से डिगा नहीं, वह व्यक्ति जो शरीर से दुर्बल और कृश होकर भी अखंड-अथाह क्रियाशीलता से समन्वित था, वह व्यक्ति जिसमें आगे बढ़ने की आतुरता थी और वह व्यक्ति जिसने गलत को सही करने का अथक प्रयास किया, वे थे श्री गुरुजी गोळवलकर।

- डा. प्रफुल्ल देसाई

♦♦♦